पूर्वांचल : करघों की खामोशी

कोविड-19 के लॉक डाउन का पारंपरिक बुनाई उद्योग पर पड़ने वाले प्रभाव पर एक अध्ययन

cjp.org.in

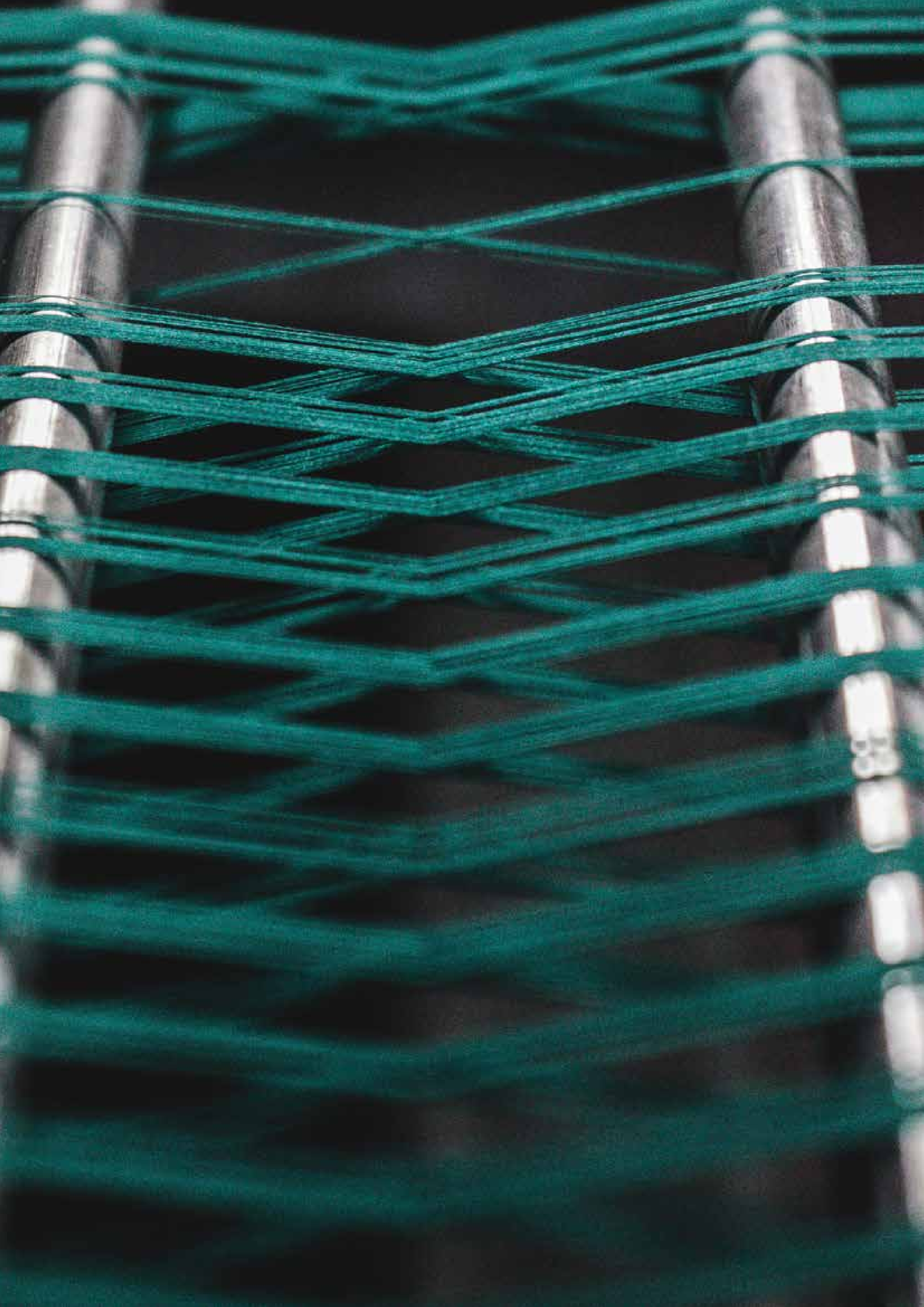

आमुख

यह रिपोर्ट 2020–2021 में जमीन से जुड़े प्रतिबद्ध शोधकर्ताओं के कई महीनों के अध्ययन की उपज है। प्रशिक्षित शोधकर्ताओं की टीम ने बनारस की समाजशास्त्री डॉक्टर मुनीज़ा खान की अगुवाई में शोध किया। इस समय रिपोर्ट का प्रकाशित होना सबसे ज़रूरी था। अध्ययन टीम की हिम्मत और उनके द्वारा अध्ययन पद्धति को निष्ठा से लागू करने के कारण यह अध्ययन अनूठा बन पाया है। महामारी के प्रभाव को समझने के लिए किए गए इस तरह के कई अध्ययन फोन द्वारा या ऑनलाइन किए गए हैं। लेकिन महामारी के समय लोगों के घरों पर या उनके काम की जगहों पर जाकर उनसे बातचीत करके इस तरह का अध्ययन इस दौरान बहुत कम हुआ है। इस कारण से भी यह अनूठा अध्ययन है। इस अध्ययन में उन बुनकरों की तबाही और दयनीय स्थितियों को दर्शाया गया है जो कभी बुनाई और बुनकरी उद्योग का आधार हुआ करते थे।

फ़ैक्ट फ़ाइंडिंग टीम ने बनारस, गोरखपुर (रसूलपुर, पुराना गोरखनाथ), आजमगढ़ (मुबारकपुर, इब्राहिमपुर, शाहपुर) और मऊ (घोसी, मधुवन) में 204 ऑन रिकॉर्ड विस्तृत साक्षात्कार किए। बुनाई के काम की अलग–अलग प्रक्रिया में शामिल लोगों के साथ हमने बातचीत की। सरकार की ख़राब व बुरी नीतियों के चलते, पिछले कई दशकों से यह उद्योग संकट का सामना कर रहा है।

इस रिपोर्ट में आंकड़ों के विश्लेषण और उसके मिलान से शोषण के अलग–अलग स्वरूपों और स्तरों का पता चलता है। 2020–2021 के विशेष संदर्भ में महामारी के चलते लगाये गये लॉक डाउन में काम बंद हो जाने के कारण रोजी–रोटी और आर्थिक संरचना पर हुए तीव्र हमले ने बुनाई उद्योग के कारीगरों और इससे जुड़े लोगों को बेसहारा बना दिया।

चरम बदहाली, भुखमरी, कर्ज में डूबने के साथ–साथ स्वास्थ्य सेवा से वंचित होने और शिक्षा तथा सरकारी सेवाओं तक पहुँच नहीं होने के कारण लोगों में चुनी हुए सरकार के प्रति अविश्वास बहुत ज़्यादा बढ़ गया है।

भारत में हाशिये पर ढकेल दिए गए इन लोगों की असुरक्षित ज़िंदगियों के बारे में इस अध्ययन में विस्तार से बताया गया है। पहले से आर्थिक तंगी झेल रहे बुनकरों को कोरोना महामारी और बगैर उचित तैयारी से थोपे गये लॉक डाउन की मार ने तबाह कर दिया। यूरोप, इंग्लैंड और अमेरिका से मिलने वाले ऑर्डर बंद हो जाने के कारण महामारी और उसके बाद के समय में पूर्वी उत्तर प्रदेश की हस्तकला, हैंडलूम और पावरलूम व्यापार को लगभग 3000 करोड़ रूपए का बड़ा नुकसान हुआ।

कपड़ा मिल के संगठनों के साथ–साथ वाणिज्य मंडल ने भी आधिकारिक रूप से बहुत सारे ऑर्डर्स रद्द होने की बात कही है। राजकोष के नुकसान से बुनकर कारीगरों में बढ़ता कर्ज, हताशा और भुखमरी का अनुमान लगाना मुश्किल है। इस परंपरागत आर्थिक क्षेत्र में व्यापार से मुनाफा कमाने वाले लोगों के लिए लॉक डाउन के पहले भी (बुनाई उद्योग में) कारीगरों को उचित और सम्मानजनक मजदूरी नहीं मिलना, नैतिक और राजनीतिक सवाल खड़ा करता है। मौजूदा स्थिति को किसी भी सरकार द्वारा बुनकरों को उचित और सम्मानजनक मजदूरी सुनिश्चित करने के लिए कुछ भी नहीं करने की पृष्ठभूमि में देखना चाहिए।

भूमिका

वाराणसी जिसे बनारस भी कहा जाता है, दुनिया के सबसे पुराने शहरों में से एक है। इस शहर में लोग 2000 साल से लगातार रहते आ रहे हैं। यह शहर हिंदू संस्कृति के लिए काफी मायने रखता है। लेकिन यहाँ मुसलमानों की भी अच्छी खासी तादाद है और अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के लोग भी यहाँ रहते हैं। इसलिए इस शहर में सांझी संस्कृति विकसित हुई है।

सदियों पुराना कपड़ा उद्योग इस शहर की गंगा-जमुनी तहजीब का जीता-जागता उदाहरण है, जहाँ अलग-अलग धर्म के लोग साझा संस्कृति बुनते हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण दुनिया में मशहूर बनारसी सिल्क है। इसे मुख्यतः मुसलमान बुनते हैं और इसका व्यापार मुख्यतः हिंदू करते हैं। यह साड़ी दोनों समुदायों के बीच पारंपरिक बंधन को दिखाता है। मशहूर शायर ज़म ज़म रामनगरी जो बनारस में रहते है ने इस दोहे में साझा संस्कृति को खूबसूरती से बयां किया है :

यही मिट्टी हमारे पूर्वजों का एक खज़ाना है,

इसी मिट्टी से आए हैं, इसी मिट्टी में जाना है।

कला का केंद्र है काशी, यहीं बनती है वो साड़ी,

मुसलमां जिसका ताना और हिंदू जिसका बाना है।

लेकिन ये भाईचारा और समन्वयता अब ख़तरे में है, खासकर कोविड महामारी के समय। बनारसी बुनाई उद्योग में जानबूझकर हैंडलूम को हाशिये पर धकेल दिया गया और पावरलूम ने उसकी जगह ले ली। 2014 के बाद स्थिति और बिगड़ती गयी और महामारी के समय किए गए लॉक डाउन के समय से यह उद्योग एक तरह से ठप्प हो गया।

सिटिज़न फॉर जस्टिस एंड पीस ने बनारस और पूर्वांचल क्षेत्र में फलते-फूलते इस उद्योग के संकट के कारणों को गहराई से समझने के लिए तथ्यों की पड़ताल करने का काम लिया। इस अध्ययन में दीपक मलिक, वासंती रमन, अब्दुल्ला अंसारी, लेनिन रघुबंशी और कई अन्य प्रबुद्ध लोग हमारे सहयोगी तथा सलाहकार रहे। डॉक्टर मुनीज़ा खान सितंबर 2020 में शुरू किए गए इस अध्ययन की समन्वयक हैं।

तथ्य अनुसंधान के लिए हमारी टीम ने बुनकर और ज़रदोजी कारीगरों के साथ बनारस, गोरखपुर (रसूलपुर, पुराना गोरखनाथ), आजमगढ़ (मुबारकपुर, इब्राहिमपुर, शाहपुर) और मऊ (घोषी, मधुवन) में चार जगहों पर विस्तृत साक्षात्कार किए। हमने भारत के सबसे बेहतर कपड़ों की बुनाई के अलग-अलग चरणों और इस काम के अलग–अलग पहलुओं के बारे में लोगों से बातचीत की। इनमे नक्शा और पट्टा बनाने वाले लोग भी शामिल थे। नक्शा और पट्टा से कपड़े की पहली तस्वीर उभरती है। इसके अलावा रिलिङ्ग, बुनाई, रंगाई, जरदोज़ी, एंब्रोईडेरी, कढ़ाई के काम करने वाले लोगों के भी साक्षात्कार लिए गए। साथ में पॉलिशिंग, स्टोन लगाने और काम को पूरा करने में लगे कारीगरों के साथ भी संवाद किया गया। हमने बनारस की सराइया, नक्की घाट, जलालीपुरा, लल्लापुरा, बड़ीबाजार, बजरडीहा, मदनपुरा, शिवाला, कोयला बाज़ार चौहट्टा और लोहता तथा सरायमोहना से सटे इलाकों में लोगों से बातचीत की। इन जगहों से हमने 200 सैंपल जुटाये।

हमने देखा की महामारी से बुनकरों को न सिर्फ आर्थिक नुकसान हुआ है और उनके ऊपर कर्ज चढ़ा है, बल्कि अनुचित रूप से इस तबाही की सबसे ज़्यादा मार मुसलमानों तथा महिलाओं पर पड़ी है।

यह रिपोर्ट उनकी हताशा और उनके प्रति होने वाले भेदभाव को सामने लाने और उनकी समस्यायों का संभावित समाधान सुझाने का प्रयास है।

बुनाई उद्योग की एक झलक

बुनाई उद्योग में 1970 से 1990 के बीच भारी जनसांख्यिकीय बदलाव हुआ। इस दौरान मुसलमान गद्दीदार उभरकर आये जो अंतर्राष्ट्रीय और देश के बाजार में उपस्थिति दर्ज करने में सफल हुए। इस 20 साल के अंतिम सालों में सांप्रदायिक दंगे हुए। इन दंगों को इस रूप में देखा गया कि समुदाय में मोमिन, अंसारी जैसे सफल व्यापारी वर्गों का उभार हुआ, यहाँ अध्ययन में इस प्रतिक्रिया का भी विश्लेषण किया गया है। आर्थिक संपन्नता के इस दौर में हैंडलूम क्षेत्र का विस्तार हुआ और हथकरघा या तो पीछे रह गया या ख़त्म होने की कगार पर पहुँच गया।

हमने इस जमीनी तहक़ीक़ात में हैंडलूम और पावरलूम के संयुक्त सेंसस (इसी सेंसस में पावरलूम उद्योग के रहने को स्वीकार किया) की मदद से 1990 के दशक के मध्य से कई दशकों तक हथकरघा उद्योग की लगातार हो रही गिरावट का जायजा लिया है। सार में बुनाई उद्योग की संरचना में मूलभूत बदलाव आया और उसी के साथ बुनकरों की जिंदगी भी बदल गयी। हथकरघों की संख्या घटते-घटते हजारों में पहुँच गयी और उसके अनुरूप बुनकरों की संख्या में बड़ी गिरावट आयी (रमन, 2020, द वर्ल्ड ऑफ बनारस वीवर)।

इसे विडंबना ही कहना चाहिए की जिस दौर में हथकरघा उद्योग को छल-कपट के सहारे धीरे-धीरे समाप्त किया जा रहा था, उसी दौर में हथकरघा उद्योग का सेंसस किया गया था। 2009-2010 में नेशनल काउंसिल ऑफ अप्लाइड इकॉनमी ने तीसरा सेंसस किया। इसमें 1995-2010 के बीच बुनकरों की संख्या 3 लाख घटने की बात उभरकर आयी। (भौमिक, 2019, इपीडब्ल्यू आर्टिकल, वॉल्यूम 54, संख्या 49, 14 दिसंबर, 2019)

हथकरघा उद्योग की संरचना बदल गयी है। 1995-96 के हथकरघा और पावरलूम के सेंसस में इस उद्योग के शीर्ष पर बहुत छोटे संख्या में गृहस्था/गद्दीदार/ व्यापारी, बीच में स्वरोजगार में लगे भारी संख्या में बुनकर और और सबसे नीचे बुनकरों की छोटी संख्या (जिनके पास करघा नहीं है

और जो मजदूरी के एवज में बुनाई करते है) है (रमन)। अगले एक दशक में इस संरचना में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। 2010 के सेंसस में इसे देखा जा सकता है।

इस सेंसस में इस उद्योग का ढाँचा पिरामिड की तरह दिखता है जहाँ निचले पायदान पर अत्यधिक गरीब बुनकर हैं जिन्हें अब स्वरोजगार करने वाले बुनकर नहीं कहा जा सकता, बल्कि मजदूर कहा जा सकता है।

इस पृष्ठभूमि में बनारस के बुनाई उद्योग में पावरलूम ने हथकरघे की जगह ले ली। पावरलूम में भी महिला कामगारों की संख्या पुरुषों से ज़्यादा है (सुल्ताना और महरुनिस्सा, 2016)।

इस उद्योग की बर्बादी में राज्य का वित्तीय और संरचनात्मक प्रोत्साहन देने में असफल होना अहम कारक है।

लघु पावरलूम उद्योग पर भी सरकार की ग़लत नीतियों और स्थिति में हो रहे बदलाव का प्रभाव पड़ा है। इस लघु उद्योग को अब 100-200 पावरलूम के बड़ी इकाइयों के साथ प्रतिस्पर्धा करना पड़ रहा है। (रमन)। इस उद्योग की जटिल संरचना में कई स्तर हैं। गृहस्था या गद्दीदार सबसे ऊपर, 2-4 लूम का मालिक बीच में और सबसे निचले पायदान पर भारी संख्या में मजदूर–बुनकर। जानकार मानते हैं की इस उद्योग की संरचना हथकरघा उद्योग की संरचना जैसी ही है।

नोटबंदी (2016) और उसके बाद जीएसटी ने भरोसा, उधारी और पोस्ट डेटेड चेक के सहारे चलने वाले बुनाई उद्योग को और तबाह कर दिया। कोविड महामारी के समय लागू की गई लॉक डाउन से पहले ही केंद्र सरकार द्वारा जानबूझकर लायी गई ग़लत नीतियों के कारण यह उद्योग खस्ताहाल हो चुका था। बगैर किसी सोच-समझ के लागू की गई लॉक डाउन बीमार हो चुके इस उद्योग में काम करने वाले बड़े संख्या में बुनकरों (जो वास्तव में मजदूर बन गए थे) पर आखिरी वार था जिससे इनकी कमर टूट गई।

आभार

प्रोफ़ेसर दीपक मलिक, दिवंगत अब्दुल्ला अंसारी, वासंती रमन, लेनिन रघुबंशी और चंचल मुखर्जी के निर्देशन और सहयोग से हमने यह रिपोर्ट तैयार की है। हम इस सुझाव और सहयोग के लिए उनके आभारी हैं। हमारे मार्गदर्शकों में से दो मार्गदर्शकों के कुछ शब्द :

प्रोफ़ेसर दीपक मलिक :

बुनकरों को प्रभावित करने वाली बेरोजगारी और भयानक गरीबी, चिंता का विषय हैं और यह मौजूदा शासन से जुड़ा बड़ा राजनीतिक सवाल भी है। महामारी ने लघु उद्योगों की तबाही और बर्बादी की गति को अभूतपूर्व रूप से तेज किया है। लेकिन इस उद्योग और इससे जुड़े लोगों की तबाही के लिए सिर्फ महामारी ज़िम्मेदार नहीं है। लघु उद्योग पर आश्रित देश के 80 प्रतिशत लोगों के रोटी-रोजी से जुड़े लघु उद्योग की तबाही और बर्बादी सरकार की नीतियों का हिस्सा है। इन नीतियों को 1991 में उदारीकरण, निजीकरन और भूमंडलीकरण के नाम से लाया गया। लेकिन इन नीतियों को लागू करने की रफ्तार धीमी और कमजोर थी क्योंकि इन्हें कठोरता से लागू करने वाली सरकार मौजूद नहीं थी। इन नीतियों को कठोरता से लागू करने वाली सरकार 2014 में सत्ता में आयी। यह ऐसी सरकार है जो बहुसंख्यक सांप्रदायिकता की राजनीति और नव-उदारवादी अर्थनीति के घालमेल से चलती है। वास्तव में हमारे स्वतंत्रता संग्राम की विरासत के रूप में उभरते राष्ट्र और लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए बनाये गये सभी उपक्रमों को मौजूदा शासन बेरहमी और तेजी से ख़त्म कर रहा है। स्वतंत्रता के बाद यह पहली सरकार है जो सक्रिय रूप से गरीबों, मध्यम वर्ग, अल्पसंख्यक और हाशिये के लोगों के हितों के खिलाफ काम कर रही है। 1947 के बाद से यह सबसे ज़्यादा देश-विरोधी सरकार है। कई मामलों में इस सरकार ने औपनिवेशिक अँग्रेजी शासकों से भी बदतर काम किया है।

बनारस में बुनकरों की स्थिति की जो तस्वीर प्रस्तुत की गई है वह उनकी आर्थिक बदहाली की सामान्य प्रक्रिया को दिखाता है। साथ ही यह उनके रोजी-रोटी पर बहुसंख्यकवादी सांप्रदायिक हमले को भी दिखाता है। हकीकत में बहिष्कार और सांप्रदायिकता, दोनों प्रक्रिया पूंजी को मजबूत करने का जरिया है। त्याग और तकलीफ़ों की बदौलत हासिल किए गए इतिहास की विरासत को ध्वस्त करने में दोनों प्रक्रिया बहुत कारगर हैं। मौजूदा प्रक्रिया जारी रहने की स्थिति में समावेशी समाज तथा समावेशी विकास के तहत लोगों ने जो थोड़ा अधिकार हासिल किया है, वह भी समाप्त हो जाएगा। लोगों के अधिकार अपर्याप्त और सीमित थे, लेकिन वह बेहतर समय की संभावना की ओर इशारा ज़रूर करते थे।

Prof. Dipak Malik

दिवंगत अब्दुल्ला अंसारी :

बुनकरों को बिजली बिल में कुछ छूट ज़रूर दी गई है। लेकिन यह छूट सिर्फ पावरलूम वालों को दी गई है, लेकिन हथकरघा चलाने वालों को बिजली बिल का पूरा भुगतान करना पड़ता है। जबकि बड़े व्यवसायी और माफिया लोग आसानी से बिजली चोरी कर लेते हैं। ये लोग बिजली विभाग के कुछ भ्रष्ट कर्मचारियों की मिलीभगत से काम करते हैं।

बिजली चोरी की घटनाओं को देखते हुए राज्य सरकार ने पावरलूम उद्योग को बिजली में मिलने वाली छूट को एक तयशुदा यूनिट तक सीमित करने और उससे ऊपर उपभोग किए जाने पर बिजली का पूरा दाम वसूलने का फैसला किया। बिजली चोरी के कारण बिजली निगम को होने वाले नुकसान की भरपाई आम लोगों को काफी हद तक ज़्यादा दर से बिजली का बिल चुकाकर करनी पड़ती है। पावरलूम के मालिक सम्पन्न हैं लेकिन बिजली निगम के घाटे की भरपाई गरीब लोगों को करनी पड़ेगी। क्या बिजली माफिया पर किसी तरह की कार्यवाही नहीं करना और आम लोगों पर भार डालना उचित है?

बनारसी साड़ी की अंतराष्ट्रीय पहचान पावरलूम द्वारा तैयार की गई साड़ी नहीं है न ही यह साड़ी बनारस की पहचान है। बनारस की पहचान हथकरघे से तैयार की गई साड़ी है। हथकरघे से तैयार की गई साड़ी को धरोहर उद्योग का तमगा दिया गया है, न कि पावरलूम द्वारा तैयार की गई साड़ी को।

पावरलूम बुनाई उद्योग के अलावा बनारस में कई लघु उद्योग हैं जिन्हें बढ़ावा मिलना चाहिए। लेकिन इन उद्योगों को किसी तरह कि आर्थिक मदद या छूट नहीं दी गई है। उदाहरण के लिए हम लकड़ी के खिलौने, पीतल के बर्तन और थार जाली के व्यापार को ले सकते हैं।

(Late) Abdullah Ansari

AK
AK
AK
YFC
YFC

प्रस्तावना

भूमिका

साभार

सूची

शब्दावली 1

कार्यकारी सारांश 2

लक्षित समूह और शोध पद्धति 7

पृष्ठभूमि 13

सामाजिक पृष्ठभूमि

स्थान पहचान

पूर्वांचल में बढ़ता सांप्रदायिक विभाजन और बुनाई उद्योग पर उसका असर जनसांख्यिकीय का विश्लेषण : लिंग, उम्र, शिक्षा, परिवार का आकार बुनाई के काम में महिलाएं : महिलाओं की अधीनता को इंटरसेक्सशनल लेंस से देखना

काम के प्रकार और अनुमानित मजदूरी 24

करघा का स्थिति 26

केस स्टडीज

लॉक डाउन का प्रभाव 30

काम के स्वरूप और काम के घंटे

आमदनी, गुजर-बसर और कर्ज

शिक्षा पर प्रभाव

स्वास्थ्य, पानी और स्वच्छता पर प्रभाव

सरकारी राहत योजनाएँ

लॉक डाउन के समय भेदभाव 67

लॉक डाउन का महिलाओं पर प्रभाव 69

बुनाई उद्योग में आपूर्ति श्रृंखला 71

पारंपरिक आपूर्ति श्रृंखला

कॉर्पोरेट घरानों के प्रवेश का प्रभाव

बनारस की बुनाई उद्योग और मानव अधिकार

बनारसी साड़ी और इंटेलेक्चुवल प्रॉपर्टी राइट्स

समापन टिप्पणियाँ और मुख्य निष्कर्ष 83

उत्तरदाताओं की अनुशंसा 88

अनुशंसा 90

देश व्यापी अभियान का आहवान 93

केस स्टडीज 94

शब्दावली

आंगनबाड़ी	बच्चों की देखभाल करने का स्थान
आरी	ज़रदोजी का ऐसा काम जो बारीक काम नहीं है
बनारसी	बनारस के रहने वाले या बनारस में बनने वाली विशेष तरह की सिल्क साड़ी/ फ़ैब्रिक
बाना	कपड़ा
बस्ती	बसत, लोगों के रहने की जगह
बिरादरी	जाति समूह
बुनकर	कपड़ा बुनने वाले
बुर्का	चेहरे और सर को पूरी तरह से ढकने के लिए मुस्लिम महिलाओं द्वारा पहने जाने वाला लंबा कपड़ा
चुनरी दुपट्टा	भारतीय महिलाओं द्वारा पहने जाने वाले पारंपरिक स्कार्फ/ स्टोल
धागा	धागा
दिनी तालिम	मुसलमानों की धार्मिक शिक्षा
गद्दी	कारोबार
गद्दीदार	कारोबारी और व्यापारी
गंगा-जमुनी तहजीब	हिंदू-मुसलमानों की साझा संस्कृति
गृहस्था	उस्ताद बुनकर
गोटा	सोने की लट
हिजाब	मुस्लिम महिलाओं द्वारा सर और चेहरे ढकने के लिए पहने जाने वाला पारंपरिक लंबा स्कार्फ
जालदार झालर	जालदार जाल
जहालत	अशिक्षा
जन धन	विशेष तरह का बैंक खाता
कबाड़ी	कबाड़ बेचने और खरीदने का काम करने वाला
कफन	शव को ढकने वाली चादर
कारीगर	बुनकर, कपड़ा बनाने वाला
कारचोप	जरदोज़ी के काम के लिए लकड़ी का फ्रेम
करघा	लकड़ी का करघा
कारखाना	जहां एक साथ कई मजदूर काम करते हैं
कुर्ता	पारंपरिक रूप से शरीर के ऊपरी हिस्से में पहने जाने वाला कपड़ा
कुर्ती	आम तौर पर महिलाओं द्वारा पहने जाने वाला छोटा कुर्ता
लहंगा	किसी विशेष मौके पर भारतीय महिलाओं द्वारा पहने जाने वाली लंबी स्कर्ट
लुंगी	कमर पर पुरुषों द्वारा पहने जाने वाले कपड़े
मदरसा	मुसलमान बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने वाली जगह, कई बार उन्हे यहाँ सामयिक शिक्षा भी दी जाती है।
माला	माला

मंदी	आर्थिक मंदी
मजदूर	मजदूर
मजदूरी	मजदूरी
मुकुट	मुकुट
मोहल्ला	मोहल्ला
नक्शा	बुनाई से पहले बनाया गया डिज़ाइन
नमक-चावल	नमक-चावल
नमक –रोटी	नमक और रोटी
नरी भरना	चरखी पर धागा लगाना
नग	रत्न
ओबीसी	अन्य पिछड़ा वर्ग
पकोड़ा	पकोड़ा
पान	पान
पट्टा	बुनाई के पहले नक्शे के अनुसार ग्राफ पर किया गया डिज़ाइन
रमज़ान	मुसलमानों का पवित्र महीना जिसमें वे उपवास करते हैं
रेशम	रेशम
सलाम	पारंपरिक उर्दू अदाब
सांझी संस्कृति	सांझी संस्कृति
साड़ी	साड़ी
सरपंच	गाँव का मुखिया
सट्टी	व्यापार केंद्र
एससी	अनुसूचित जाति
सेवइयाँ	सेवइयाँ
शेरवानी	विशेष मौके पर भारत में पुरुषों द्वारा शरीर के ऊपरी हिस्सा में पहने जाने वाली पोशाक
एसटी	अनुसूचित जनजाति
तबलिगी जमात	इस्लाम के एक समुदाय के अनुयायी जिनके ऊपर कोरोना महामारी फैलाने का झूठा आरोप लगाया गया
ताना	ताना
तंछूयी	एक तरह की रेशम की साड़ी जिस पर चाँदी या सोने की कढ़ाई की गयी है
तहजीब	संस्कृति के लिए उर्दू शब्द
टिकली	छोटा गोल ग्लास
जरदोज़ी	सोने या चाँदी की कढ़ाई
ज़री Zari	कढ़ाई में उपयोग किया जाने वाले सुनहरे धागे
जरी बूटी	चाँदी/ सुनहरे धागे और मोतियों की कढ़ाई

सारांश

यह जमीनी पड़ताल साल 2020 और 2021 में की गई। इसमें पूर्वांचल (पूर्वी उत्तर प्रदेश) के परंपरागत बुनाई उद्योग की दुर्दशा, विशेष रूप से महामारी और लॉक डाउन के संदर्भ में, गहरी और बारीक पड़ताल की गई है।

बनारस की समाज विज्ञानी डॉक्टर मुनीज़ा खान की अगुवाई में हमारी 17 सदस्य की टीम ने बनारस के मशहूर बुनाई उद्योग से जुड़े लोगों के रिहाईशी इलाके में 204 लोगों के विस्तृत साक्षात्कार लिए, 37 विडियो साक्षात्कार और 19 ऑडियो साक्षात्कार भी किए गए।

सर्वे में बनारस (13 जगह), गोरखपुर (रसूलपुर, पुराना गोरखनाथ), आजमगढ़ (मुबारकपुर, इब्राहिमपुर, शाहपुर) और मऊ (घोषी, मधुवन) के लोगों ने हिस्सा लिया।

हमारी टीम ने महामारी के समय सर्वे करने के दौरान मास्क पहनने, सेनिटाइजर का उपयोग करने और सामाजिक दूरी बनाए रखने जैसे अपनाए जाने वाले सभी ज़रूरी सुरक्षा नियमों का पालन किया।

इस रिपोर्ट में दिये गए आंकड़े और विस्तृत विश्लेषण से अचानक और बगैर किसी योजना से लागू किए गए लॉक डाउन के कारण बुनाई उद्योग और जरदोजी उद्योग के गहरे संकट में पड़ने की बात उजागर होती है। यह उद्योग पहले से ही सरकार की ग़लत नीति या अस्पष्ट नीति के कारण दशकों से संकट का सामना कर रहा था।

लॉक डाउन में काम बंद होने से अर्थनीति और आर्थिक ढांचे पर बड़ी मार पड़ी। इसने भयानक आर्थिक बदहाली, कर्जा बढ़ना, भीख मांगने की नौबत आने और भुखमरी की ऐसी हालत पैदा की जिस पर किसी भी समाज और राज्य को शर्मिंदा होना चाहिए।

इन स्थितियों के बावजूद उत्तर प्रदेश सरकार और केंद्र सरकार ने हजारों बुनकरों और उनके परिवारों की दुर्दशा पर किसी तरह की संवेदनशीलता नहीं दिखाई और वे संकट का सामना करने में चूक गए।

लॉक डाउन के समय और उसके बाद पूर्वी उत्तर प्रदेश के हस्तकला, हथकरघा और पावरलूम उद्योग को अनुमानित 3000 करोड़ रूपया का बड़ा नुकसान हुआ।

अध्ययन के कुछ महत्वपूर्ण और स्तब्ध कर देने वाले निष्कर्ष

सर्वे में हिस्सा लेने वालों में 89 प्रतिशत लोगों ने स्थानीय तथा राज्य सरकार पर भरोसा नहीं होने के कारण किसी भी तरह की सरकारी योजना का लाभ नहीं उठाने की बात कही। यह सरकारी राशन, सरकार द्वारा आर्थिक मदद, बिजली का बढ़ा हुआ बिल, तथा अन्य नागरिक सुविधा जैसे सभी मामलों के लिए यह सच बात थी। शेष 11 प्रतिशत लोगों ने सरकार से मदद/समर्थन के लिए गुहार लगाई लेकिन सरकारी बर्ताव से वे संतुष्ट नहीं थे।

केंद्र सरकार की योजनाओं तक पहुँच का अभाव :

- केंद्र सरकार की बहुत प्रचारित प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना (मई, 2016) लोगों तक नहीं पहुंची। हमसे बात करने वाली महिलाओं में सिर्फ 10 प्रतिशत महिलाएं इस योजना के लिए पंजीकृत थीं। शेष महिलाएं पंजीकरण करने की कई कोशिशों के बावजूद पंजीकृत नहीं हो पायी।
- लोगों के लिए प्रधानमंत्री जन धन योजना तक पहुँच भी आसान नहीं थी। 52 प्रतिशत लोगों का जन धन योजना का कोई खाता नहीं था। 48 प्रतिशत खाता धारकों में से सिर्फ 58 प्रतिशत लोगों के खाते में सिर्फ एक बार सरकार की ओर से पैसा आया।

अधिकांश बुनकरों में जो मजदूर बन चुके हैं या जिनके पास एक या दो हथकरघा है, मुख्यतः मुसलमान अंसारी, दलित, अन्य पिछड़ा वर्ग से आते हैं। इनमे उच्च जाति के कुछ मुसलमान भी हैं। आज इस उद्योग का बहुत बड़ा हिस्सा आर्थिक बदहाली की चरम स्थिति में पहुँच गया है और पूरी तरह से यह गायब होता जा रहा है। आर्थिक नीतियों और राजनीतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रभावित करने के लिए इन विषयों पर तथ्यपरक और तर्क–सम्मत जन संवाद होना चाहिए।

हमारी टीम ने महिलाओं के साथ भी बातचीत की। महिलाएं इस उद्योग की रीढ़ हैं। बुनाई के काम के साथ–साथ वे स्पूल फीडिंग, साड़ी की सज्जा और फिनिशिंग का काम भी करती हैं। हमारे सैंपल में 24 प्रतिशत महिलाएं और लड़कियां थी।

हमने अधिकांश महिलाओं और लड़कियों को बगैर किसी भुगतान के काम करते हुए पाया। उनके काम को घरेलू काम का हिस्सा समझा जाता है।

ये महिलाएं और लड़कियां आर्थिक बदहाली, भुखमरी और घरेलू हिंसा के अलावा अन्य स्वास्थ्य दिक्कतों की दुखदायक स्थितियों को बयां कर रही थीं।

पिछले तीन दशकों की लक्षित बर्बर सांप्रदायिक हिंसा और राजनीति का समग्रता में महिलाओं और विशेष रूप से मुसलमान महिलाओं पर ख़ास तरह का प्रभाव पड़ा है। जेंडर का भी सांप्रदायिक विभाजन हुआ है और इसने जेंडर आधारित जो एकजुटता थी उसे ख़त्म कर दिया है। यह एकजुटता एक जमाने में बन्दिशों और विभाजन को पाट देती थी, लेकिन महामारी के समय ऐसा नहीं हो पाया।

मीडिया, खासकर टेलीविजन चैनलों द्वारा सांप्रदायिक विभाजन को जो बढ़ावा दिया गया, उसने महामारी के इस दौर में स्थितियों को बदतर करने में खास भूमिका निभाई। ये टेलीविजन रिपोर्टें न सिर्फ तथ्य से परे थीं बल्कि वह देश के सबसे बड़े अल्पसंख्यक समुदाय के खिलाफ नफ़रत फैलाने के संविधान विरोधी एजेंडा से प्रेरित थी और जिसके कारण पूर्वी उत्तर प्रदेश के मुसलमान बुनकरों को अपमान और तकलीफ़ सहना पड़ा।

हमारे सैंपल में उल्लेखनीय संख्या में लोगों ने महामारी के फैलने के सप्ताह बाद से आस–पड़ोस में आर्थिक बहिष्कार का सामना करने की बात बतायी। इस दौरान जानबूझकर महामारी के लिए एक खास समुदाय को ज़िम्मेदार ठहराने के लिए "कोरोना जिहाद", "वाइरस को तेजी से फैलाने वाले समुदाय" जैसी खबरें चलायी गयीं।

सरकार, व्यापार और निगमों की सिफ़ारिशें

- इस रिपोर्ट में हमने केंद्र और राज्य सरकार के सामने विस्तृत सिफ़ारिशें प्रस्तुत की हैं और उनसे नीतियाँ बनाने तथा बजट आबंटित (पिछले सात-आठ सालों से बुनाई उद्योग के लिए सरकार का बजट आबंटन कम होता जा रहा है) करने से पहले सभी हितधारकों से सलाह-मशवरे करने का आग्रह किया है। इसमें गाँव, तालुका और राज्य स्तर पर सुधार करने की सिफ़ारिश की गई है। जिसमें पेशेवरों के गाँव बसाने और तालुका व राज्य स्तर पर सहकारी समिति बनाने के लिए सरकारी प्रोत्साहन देने की भी सिफ़ारिश की गई है। सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सभी लाभ और योजनाएँ सभी बुनकरों और कारीगरों तक पहुँच सकें।
- इस रिपोर्ट में हमने व्यापार और मानव अधिकार पर संयुक्त राष्ट्र सभा की नीतियों का हवाला देते हुए बुनकरों की समृद्ध परंपरागत कला के बदौलत फलने-फूलने वाले निगमों, निर्यातकों और ब्रांड से कारीगरों/बुनकरों को सम्मान जनक मजदूरी देने और सामाजिक सुरक्षा के मानकों का पालन करने का आग्रह किया है।
- इस बात को स्थापित करना चाहिए की कारीगर/बुनकर ही वास्तव में बनारसी साड़ी और बेल बूटेदार कपड़ों के बौद्धिक सम्पदा के मालिक हैं। इस बात की जानकारी कारीगरों/बुनकरों को नहीं है। (2009 में जिओग्राफिकल इंडिकेशन हेंडीक्राफ्टस के तहत पंजीकरण) (https://search.ipindia.gov.in/GIRPublic/Application/Details/237)

राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर अभियान

राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर नीचे दिये गए मुद्दों को केंद्र में रखकर संयुक्त और सतत अभियान चलाने की फौरी ज़रूरत है :

- शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के रोजगार और भारत की सांस्कृतिक धरोहर से नजदीकी से जुड़े इस उद्योग और हस्त कला को जीवित रखने को सुनिश्चित करना।
- सरकार द्वारा नीति और कार्यवाही करने की योजना बनाने से पहले लोकतांत्रिक तरीके से संवाद करना चाहिए।
- कारीगरों और बुनकरों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना बनाना और इसमे महिलाओं पर ज़्यादा ज़ोर देना।
- कारीगरों और बुनकरों के साथ संबंध में निगम और व्यापार को सामाजिक दायित्व बद्धता और मानव अधिकार को शामिल करने के लिए आग्रह करना चाहिये।
- इस रिपोर्ट में उठाये गए अभियान के मुद्दों पर निर्वाचित जन प्रतिनिधियों के समर्थन को सुनिश्चित करना।
- इन सामग्रियों का उपभोग करने वाले तथा सभी भारतीयों को इस अभियान में शामिल होना चाहिए और इस महत्वपूर्ण धरोहर उद्योग को जीवित रखने को सुनिश्चित करना चाहिए।

लक्षित समूह और शोध पद्धति

यह तथ्य संकलन पर आधारित एक शोध अध्ययन है। विशेषज्ञों से कई बार सलाह करने के बाद प्रश्नावली को अंतिम रूप दिया गया और जमीन पर काम करने वाले वॉलंटियरों ने इसका समुचित उपयोग किया। अध्ययन में हमने सर्वे के लिए संरचित साक्षात्कार का उपयोग किया।

फील्ड वर्क के लिए बनाई गई प्रश्नावली को विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरते हुए तैयार किया गया। एक ऑनलाइन मीटिंग आयोजित की गई जिसमें शामिल होने वाले लोगों के नाम नीचे दिए गए हैं :

- **प्रोफ़ेसर दीपक मलिक** – बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के सेवा-निवृत अध्यापक और गाँधीयन इंस्टीट्यूट ऑफ स्टडीज़ के निर्देशक एमेरिटस। वह एक राजनीतिक चिंतक, लेखक, अर्थनीतिविद और इतिहासकर हैं।
- **स्वर्गीय अब्दुल्ला अंसारी** - बनारस के पब्लिक इंटेलेक्चुअल, शिक्षाविद तथा बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी जो बुनकरों के हितों के मुखर हिमायती थे।
- **प्रोफ़ेसर वासंती रमन** - **समाज विज्ञानी वासंती रमन दिल्ली के महिला विकास अध्ययन केंद्र की सेवा-निवृत प्रोफ़ेसर हैं।**
- **तीस्ता सेतलवाड़** - मानव अधिकार कार्यकर्ता, वरिष्ठ पत्रकार, अकादमिक, इतिहासकर और शिक्षाविद हैं। वह सिटीजन फॉर जस्टिस एंड पीस (सीजेपी) की सचिव हैं।
- **लेनिन रघुवंशी** - दलित अधिकार और राजनीतिक कार्यकर्ता तथा सामाजिक उद्यमी हैं। वह पीपल्स विजिलेन्स कमेटी ऑन ह्यूमन राइट्स, बनारस के संस्थापकों में एक हैं।
- **डॉक्टर मुनीज़ा खान** - मानव अधिकार कार्यकर्ता, अकादमिक, गाँधीयन इंस्टीट्यूट ऑफ स्टडीज़ में शोधकर्ता और बनारस में सीपीजे फील्ड ऑफिस की समन्वयक।
- **चंचल मुखर्जी** - सामाजिक कार्यकर्ता और समाजवादी जन परिषद के सदस्य।

इन लोगों ने अध्ययन की रूपरेखा और मात्रात्मक मानक को लेकर गहन विचार-विमर्श किया।

कोरोना महामारी के बाद उत्तर प्रदेश में बुनकर तथा बुनाई उद्योग की स्थिति के बारे में हमारे टीम के कई सदस्यों ने वासंती रमन के साथ सलाह करके नोट्स को तैयार किया था।

इस नोट का उपयोग छोटे समूह में अध्ययन के सवाल/मुद्दों पर चर्चा करने के लिए किया गया। इससे हमें कोरोना महामारी के विशेष संदर्भ में पूछे जाने वाले सवालों को चिन्हित करने में मदद मिली। हमनें सचेत रूप से बुनकरों के सभी तबकों जैसे हस्तकरघा, पावरलूम के बुनकर, जरदोज़ी कारीगर आदि को सर्वे का हिस्सा बनाया। बुनाई में महिलाओं के काम और महिलाओं की स्थितियों से जुड़ा सवाल सर्वे का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

हम लोगों ने उत्तर-दाताओं से सवालों के विस्तृत और तफ़सीली जवाब लेने का निर्णय किया था, हमने उन्हें सिर्फ हाँ या न में जवाब देने के लिए नहीं कहा। लोगों के जवाब देने में लचीलापन देखने का मौका मिला। इस कारण से लोगों ने हमें विस्तार से जवाब दिया जिसमे विस्तृत सूचनाएँ होती थी। इससे कई पहलुओं के बारे में हमारी समझदारी बनी।

प्रश्नावली तैयार करने के बाद उसका फील्ड में परीक्षण किया गया। सर्वे शुरू करने से पहले परीक्षण के आधार पर उसमे कुछ संशोधन किए गए।

---

[1] वासंती रमन और अब्दुल्ला अंसारी इनमे शामिल थे।
अँग्रेजी और हिंदी में मसोदा प्रश्नावली रिपोर्ट में संलग्न है।

सर्वे टीम

प्रशिक्षित वॉलंटियर, शोध करने वाले और फील्ड वर्कर को मिलाकर बनाई गई 17 लोगों की टीम ने प्रत्यक्ष रूप से अध्ययन क्षेत्रों में काम किया। टीम में 11 महिलाएँ थी और 6 पुरुष थे। फील्ड टीम में 10 मुसलमान समुदाय के और 7 हिंदू समुदाय के सदस्य शामिल थे। सीजेपी के बनारस क्षेत्रीय कार्यालय के सामुदायिक संगठकों ने भी फील्ड में काम किए। दो पुरुष फील्ड वर्कर के अलावा सभी टीम सदस्य स्नातकोत्तर हैं और दो स्नातक फील्ड वर्कर बुनकर समुदाय के हैं। तथ्य अनुसंधान के काम में इनका अनुभव विशेष रूप से पूर्वांचल में बुनकरों/ज़री कारीगरों के बारे में काम आ सकता है। इसलिए इन्हें टीम में शामिल किया गया।

स्थान का चयन

मौजूदा अध्ययन पूर्वी उत्तर प्रदेश के बुनकरों और जरी कारीगरों पर कोविड महामारी के समय की लॉक डाउन के प्रभाव को समझने के लिए प्राथमिक शोध करने का गहन प्रयास है। अध्ययन क्षेत्र के लिए हमने पूर्वी उत्तर प्रदेश के चार जिले बनारस, आजमगढ़, मऊ और गोरखपुर को चुना क्योंकि इन जिलों में भारी तादाद में बुनकर रहते हैं। अध्ययन सिर्फ बुनकर/कारीगर (महिला और पुरुष दोनों) जो हथकरघा, पावरलूम, जरदोजी का काम करते हैं या बुनाई उद्योग से जुड़े घरेलू काम करने वालों पर केंद्रित है। प्रमुख बुनाई के काम में नक्शा बनाना, पत्ता बनाना, वार्प का काम, रंगाई करना, नरी भरना (इस काम को महिलाएँ घर पर करती हैं), बुनाई, फिनिशिंग (महिलाओं द्वारा काटना), ज़री का काम, एंब्रोइडेरी, नग, उभारना, साड़ी छपाई, साड़ी रंगाई, साड़ी पॉलिशिंग और वेक्स पॉलिशिंग।

सेंपलिंग का स्वरूप

सेंपलिंग का स्वरूप जहाँ एक ओर विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया गया वहीं दूसरी ओर यह अनियमित भी था। इसे अध्ययन के डिजाइन के आधार पर लिया गया है।

सर्वे में लोगों को किस तरह से चुना गया?

तथ्य अनुसंधान का काम शुरू होने के कुछ समय पहले ही लॉक डाउन के समय उत्तर प्रदेश की स्थिति पर एक वेबिनार का आयोजन हुआ था। उस समय लॉक डाउन की बुनाई उद्योग पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में लगातार खबरें आ रही थीं, खासकर बुनाई उद्योग से जुड़े बनारस से ख़बर आ रही थी। भुखमरी, औने-पौने दाम पर करघा बेचने और आत्महत्या की खबरें आम बात हो गयी थीं। सर्वे में लोगों को चुनने के लिए वासंती रमन और तीस्ता सेतलवाड़ जैसे सलाहकार और विशेषज्ञों के साथ चर्चा की गई।

रमन की किताबें 'वर्ल्ड ऑफ द बनारसी वीवर, रूटलेज, 2021, एनटेंगलेड यार्न्स-बनारस वीवर एंड सोसल क्राइसिस, 2013 और द वार्प एंड द वेफ्ट, कम्यूनिटी एंड जेंडर आइडेंटिटी एमंग द वीवर्स ऑफ बनारस, 2009 ने उन्हें इस विषय का विशेषज्ञ बना दिया है।

हाशिये पर धकेल दिये गए लोगों के राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को लेकर राष्ट्रीय तथा अंतराष्ट्रीय कानून के बारे में तीस्ता सेतलवाड़ का काम हमारे सामने अनुभव का पिटारा खोल देता है। विस्तृत चर्चा के बाद हमने तय किया कि चिन्हित जगहों पर हमारे लंबे समय के मजबूत संपर्कों के जरिये हम सैंपल इकट्ठा करेंगे। वहाँ हमें वरिष्ठ/ ज़िम्मेदार लोग मिले जिन्हें बुनाई उद्योग और व्यापार के बारे में अच्छा खासा अनुभव था। हमने तय किया कि पहले हम इलाके के सभी बुनकरों की सूची बनाएँगे और उसके बाद लॉक डाउन से प्रभावित लोगों को चिन्हित करेंगे। इस डेटाबेस से हमने लोगों को सर्वे के लिए चुना और प्रश्नावली फॉर्म को भरा।

इस दौरान हमें एक स्थानीय आदमी मिला। उसने बताया "हर घर की बुनकरी ख़त्म हो गयी है, लूम बिक गए हैं, जेवर बिक गये। लोगों ने एक वक्त का खाना खा कर गुजारा किया है।" उसने आगे बताया कि "लॉकडाउन से ज़्यादा ख़राब हालत अब है, लॉकडाउन में लोग मदद करते थे, पर अब कोई मदद नहीं कर रहा है। कितने लोगों से आप बात करेंगे, किसका-किसका नाम बतायें?

लॉक डाउन के कारण संकट इतना व्यापक था की हमारे लिए यह तय करना मुश्किल था की सर्वे के लिए हम किसे चुनें और कितने लोगों का सर्वे करें। इसके अलावा सर्वे करने के समय कोविड सुरक्षा नियमों का पालन करना भी जरूरी था। इन पर विस्तृत चर्चा करने के बाद

हमने बनारस के 11 जगहों से 15-15 लोग का, कुल 165 लोग, मऊ, गोरखपुर और आजमगढ़ से 10-10 लोगों यानी 30 लोगों का सर्वे करने का निर्णय लिया। बुनकर समुदाय में सर्वे के लिए लोगों का चयन वर्गीय भिन्नता, लैंगिक भिन्नता और अलग-अलग तबकों को ध्यान में रखकर किया गया। हमने बुनकरों के गरीब और मध्यम वर्ग के रहने की जगहों से कुल 195 सर्वे फॉर्म भरने का फैसला किया।

बनारस में 11 जगहों से कुल 169 फॉर्म भरा गया, मऊ में 4 जगहों से 10 फॉर्म, आजमगढ़ में 5 जगहों से 14 और गोरखपुर में 4 जगहों से 11 सर्वे फॉर्म भरा गया। इस तरह तय किया गया 195 के जगह 9 अतिरिक्त फॉर्म भरा गया क्योंकि कुछ इलाके बड़े थे। इस तरह हमारा पूरा सैंपल 204 हो गया। इन 9 अतिरिक्त सैंपल में 4 बनारस के, 4 आजमगढ़ के और एक गोरखपुर का था।

लिखित प्रश्नावली के अलावा हम लोगों ने विडियो और ऑडियो रिकॉर्डर से साक्षात्कार लिया और समूह में बैठकें कीं। अध्ययन की ज़रूरत के अनुसार बनारस में 23 विडियो और 2 वॉइस रिकॉर्डिंग हैं, मऊ के 6 विडियो और 5 वॉइस रिकॉर्डिंग, आजमगढ़ के 3 विडियो और 9 वॉइस रिकॉर्डिंग और गोरखपुर के 5 विडियो तथा 3 वॉइस रिकॉर्डिंग है।

सर्वे के लिए लोगों का चयन बुनाई उद्योग से जुड़े अलग-अलग कामों में लोगों (बुनाई का काम, जरदोज़ी का काम) के अनुपात के अनुसार किया गया। सर्वे में हिस्सा लेने वाला एक व्यक्ति एक परिवार (एक रसोई) का प्रतिनिधित्व करता है। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी थे जो बड़े संयुक्त परिवार में रहते थे लेकिन रसोई एक ही थी। हमने 204 लोगों का सर्वे किया, इसका मतलब हमने 204 परिवारों का सर्वे किया।

यह अध्ययन प्राथमिक डेटा और द्वितीयक डेटा पर आधारित है। प्राथमिक डेटा का स्रोत सर्वे है, सर्वे के दौरान साक्षात्कार के समय बनाया गया विडियो और ऑडियो रिकॉर्डिंग है। प्राथमिक डेटा का स्रोत बुनकरों के साथ चर्चा, आत्म-अवलोकन और साक्षात्कार है।

द्वितीयक डेटा का स्रोत पुस्तक, शोध पत्र, वेवसाइट, अख़बार के लेख,, रिपोर्ट्स, ऑनलाइन पोर्टल्स के लेख/ विश्लेषण और सरकारी दस्तावेज है।

अध्ययन क्षेत्र

यह अध्ययन उत्तर प्रदेश में किया गया है। राज्य में 250000 बुनकर 110000 हथकरघों पर काम करते हैं। सौ सालों से विशेष-विशेष क्षेत्र में हथकरघे का क्लस्टर विकसित हुआ है। बनारस और मुबारकपुर उच्च गुणवत्ता की सिल्क साड़ी के लिए दुनिया में जाना जाता है। स्रोत : https://niveshmitra.up.nic.in/txtle_Policy.aspx)

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों (पूर्वांचल) में रेशम और वस्त्र बनते हैं जिनकी पूरी दुनिया में बहुत मांग है। इस इलाके में बहुत ही कुशल, अर्ध-कुशल और अकुशल बुनकर हैं। बुनकरों में काफी संख्या में हिंदू समाज के दलित और अन्य पिछड़े वर्ग हैं और मुसलमान समुदाय के अंसारी बुनकर हैं। जरदोज़ी के काम में मुसलमान समुदाय के शेख और पठान बिरादरी समाज के लोग हैं। एक समय पूर्वी उत्तर प्रदेश को बुनाई उद्योग जिसमें हथकरघा और पावरलूम दोनों शामिल हैं, के कारण राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर पर ख्याती हासिल थी। हालांकि आज पूर्वी उत्तर प्रदेश का बुनाई उद्योग अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है।

मौजूदा तथ्य अनुसंधान अध्ययन पूर्वी उत्तर प्रदेश में किया गया है। कोविड महामारी में लॉक डाउन के समय भूख से बचने के लिए बुनकरों द्वारा करघा, गहना और खून बेचने की ख़बर लगातार आ रहा थी। प्राथमिक सर्वे के लिए पूर्वी उत्तर प्रदेश के चार जिलों बनारस, मऊ, आजमगढ़ और गोरखपुर को चुना गया। इन जिलों और जगहों में बुनकरों की भारी तादाद में होने के कारण सर्वे के लिए इन्हे चुना गया।

इन जगहों को सर्वे के लिए चुनने का सबसे प्रमुख कारण इन जगहों पर मुसलमानों के अंसारी समुदाय और हिंदुओं के दलित और पिछड़े वर्ग के गरीब और निम्न मध्यम वर्ग के बुनकरों का होना है। सरायमोहना गाँव में हिंदू समाज

के दलित तथा अन्य पिछड़े वर्ग के बुनकरों के रहने के कारण सोच-समझकर चुना गया। शिवाला और कोयला बाजार / चौहट्टा में जरदोज़ी कारीगरों की भारी सं ख्या में रहने के कारण इन्हे चुना गया।

सैंपल

जिला	स्थान (मोहल्ला)	Number of respondent/ sample fill interview schedule	Video interviews	Audio interviews	Total
बनारस	जलालीपुरा, सराइया, नक्की घाट, लल्लापुरा, बड़ी बाजार, बजरडीहा, रेवरी तालाब, शिवाला, कोयला बाज़ार/ चौहट्टा, लोहता (बाहरी ग्रामीण क्षेत्र), सरायमोहना (कोटवा, कोनिया बाहरी ग्रामीण क्षेत्र)	169	23	2	194
मऊ	घोसी, मलिकपुरा, करिमुद्दीनपूरा, बड़ा गाव	10	6	5	21
आजमगढ़	मुबारकपुर, इब्राहिमपुर, शाहपुर, अकबरपुर, नयापुरा	14	3	9	26
गोरखपुर	रसूलपुर, गोरखधाम, पुराना गोरखपुर	11	5	3	19
	Total	**204**	**37**	**19**	**260**

ऊपर दिये गए चार जिलों के 204 बुनकरों से संरचित साक्षात्कार की प्रश्नावली के मदद से तफ़सीली डेटा जुटाया गया। बनारस के 19 मोहल्ले, मऊ के 4 मोहल्ले, आजमगढ़ के 5 मोहल्ले और गोरखपुर के 4 मोहल्लों को प्राथमिक डेटा संग्रह करने के लिए चुना गया।

लोगों का चयन उद्देश्यपूर्ण और अनियमित तरीके से किया गया। इन जिलों में उद्देश्यपूर्ण सहभागी सर्वे अक्टूबर 2020 से दिसंबर 2020 के बीच किया गया। साक्षात्कार के लिए बनाए गई प्रश्नावली में हाँ या ना में जबाव देने वाले संक्षिप्त सवाल भी थे और विस्तृत जबाव देने वाले सवाल भी शामिल किए गए थे। प्रश्नावली को सीजेपी के वॉलंटियर और स्टाफ ने भरा। इन लोगों ने सीजेपी की फील्ड समन्वयक डॉक्टर मुनीज़ा खान की निगरानी और निर्देशन में यह काम किया।

धर्म, जाति और लिंग

बुनाई उद्योग में काम करने वाले बहुसंख्यक बुनकर और ज़री कारीगर मुस्लिम समुदाय के हैं। अधिकांश बुनकर और गृस्था मुसलमानों के अंसारी समुदाय से आते हैं जबकि ज्यादातर व्यापारी हिंदू हैं।

सरायमोहना गाँव में बड़ी संख्या में हिंदू दलित और अन्य पिछड़े वर्ग के बुनकर रहते हैं। हमने इन समुदायों की स्थिति को समझने के लिए सर्वे में इस गाँव का चयन किया। इसके अलावा हमारे पास अन्य समुदायों के बुनकरों के ऑडियो और विडियो साक्षात्कार हैं। इनमे मऊ, आजमगढ़ और गोरखपुर के रंगाई करने वाले कारीगर शामिल हैं।

उत्तर-दाताओं के धर्म और जाति

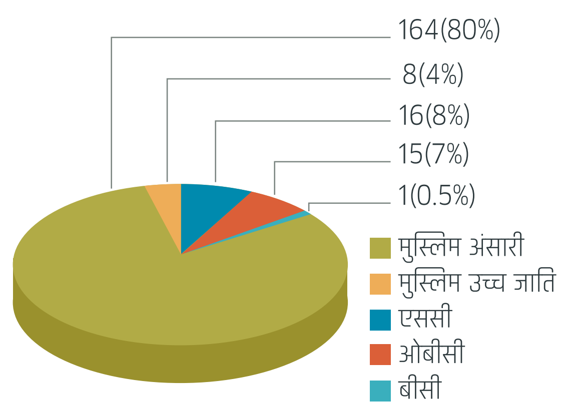

महिला उत्तर-दाताओं की जाति

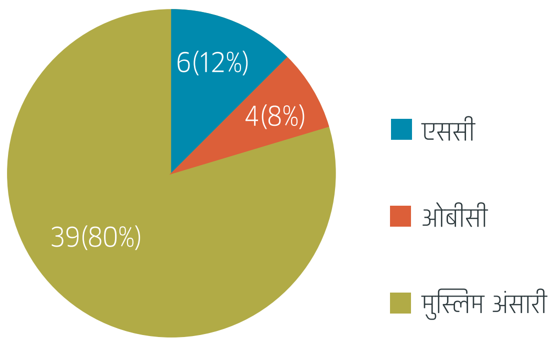

विडियो साक्षात्कार देने वाले लोगों की जाति

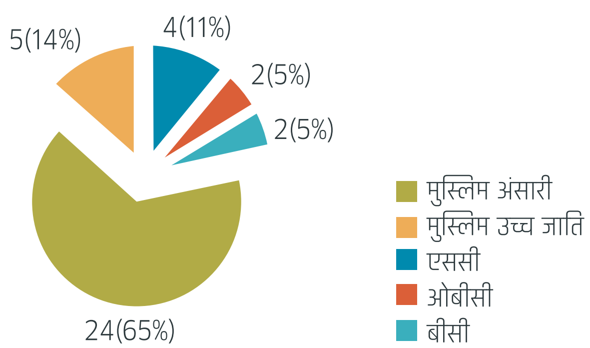

ऑडियो साक्षात्कार देने वाले लोगों की जाति

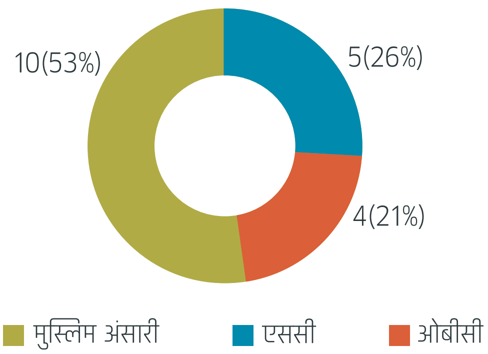

सर्वे में भाग लेने वाले कुल 204 लोगों में 16 अनुसूचित जाति के, 15 अन्य पिछड़े वर्ग के, 1 पिछड़े वर्ग से, 164 मुसलमान अंसारी समुदाय से और 8 मुसलमानों के उच्च जाति के थे। कुल 204 लोगों में 49 महिलाएं थी। इन महिलाओं में 6 दलित, 4 अन्य पिछड़ा वर्ग और 39 अंसारी समुदाय की थीं। 37 विडियो में 4 दलित, 2 अन्य पिछड़ा वर्ग, 2 पिछड़ा वर्ग, 24 अंसारी समाज और 5 मुसलमानों के ऊंचे जाति के लोगों का था। 19 साक्षात्कार का ऑडियो रिकॉर्डिंग किया गया। इन साक्षात्कारों में 5 दलित समाज के, 4 अन्य पिछड़े वर्ग के और 10 अंसारी समुदाय के लोगों का है। इनमे 24 प्रतिशत महिलाएं हैं।

प्रश्नावली पर लिखित 204 साक्षात्कार के अलावा चयनित क्षेत्रों से 56 विडियो या ऑडियो साक्षात्कार लिया गया। सिर्फ बुनाई द्वारा अलग-अलग उत्पाद बनाने वाले लोगों का साक्षात्कार लिया गया। इनमे साड़ी, रियाल, दुपट्टा, स्कार्फ, बेडकवर, सोफा कवर, चादर, तकिया कवर, लुंगी, सुटिंग-शर्टिंग सामग्री, कफ़न और जरदोसी काम जैसे मुकुट, बैज, पहनावा, सेना का प्रतीक बनाने वाले बुनकर/कारीगर शामिल हैं।

इसलिए सर्वे का पूरा सैंपल 260 है, लेकिन मानकों का विशेष जवाब सिर्फ 204 के लिए उपलब्ध है। इसलिए प्रतिशत 204 के आधार पर निकाला गया है। संलग्न सैंपल 56 है जो अलग-अलग जिला और क्षेत्र में बंटा है। मूल 204 सैंपल के आंकड़े को लेकर ग्राफ बनाया गया है और विश्लेषण किया गया है।

सभी प्राथमिक डेटा अनुसूची, विडियो, वॉइस रिकॉर्डिंग, फोटो और अवलोकन रिपोर्ट को सीजेपी की बनारस फील्ड ऑफिस में रखा गया है और उपलब्ध है।

लोगों को सर्वे के लिए संपर्क करने में चुनौतियाँ

लोगों का साक्षात्कार लेना आसान नहीं था। अधिकांश घटनाओं में लोगों ने पहले साक्षात्कार देने से इनकार कर दिया। उन्हें समझाने और उनसे संवाद बनाने के बाद वे सवालों का जवाब देने के लिए राजी हुए। सिर्फ सरईया के एक व्यक्ति ने सर्वे में हिस्सा लेने से मना किया और कहा "यहाँ क्या बुनकरों की भुखमरी देखियेगा, लोगों ने खून तक बेचा है, हम फॉर्म नहीं भरेंगे"। मुसलमान बहुल बड़ीबाज़ार में हमारा सामुदायिक संगठक साक्षात्कार के लिए एक घर पर पहुंचा तो दरवाज़े पर खड़े लोगों ने कहा "एनआरसी वाले हैं ये लोग, हमलोग कुछ नहीं बतायेंगे, आप लोग यहाँ से जायें"।

मुसलमान महिलाओं से बात करना आसान नहीं था। जलालीपुरा में एक मुसलमान महिला ने कहा "घर के मालिक मर्द है, उनसे बात करिये। हम पढ़े-लिखे नहीं हैं। हमें नहीं पता क्या सही और क्या ग़लत है। कौन हमारे लिए आया है और कौन एनआरसी के लिये"।

सभी जगहों पर आम तौर पर लोगों में सर्वे को लेकर अविश्वास और संशय देखा गया। लोग अक्सर कहते थे "सब लोग फॉर्म भरकर ले जाते हैं, हमें क्या मिलेगा? हम लोग पहले से ही भूखे मर रहे हैं, क्या होगा बता के? सब लोग मज़ाक बनाते हैं"।

उद्देश्य

- पूर्वी उत्तर प्रदेश के बुनाई उद्योग का कोविड 19 के लॉक डाउन के प्रभाव का पता लगाना।
- चयनित क्षेत्र के बुनकरों/ जरी कारीगरों पर लॉक डाउन के समय और उसके बाद उसके प्रभाव का पता लगाना।
- बुनाई उद्योग से जुड़े महिलाओं पर लॉक डाउन के प्रभाव का पता लगाना।
- बनारस, मऊ, आजमगढ़ और गोरखपुर जिला के चयनित क्षेत्र के हथकरघा बुनकरों/ कारीगरों के सामाजिक-आर्थिक और लैंगिक पृष्ठभूमि को समझना।
- पूर्वी उत्तर प्रदेश के चयनित जिलों के बुनकर/ कारीगर समुदाय (पुरुष और महिला) के रोजी-रोटी पर लॉक डाउन के प्रभाव का आंकलन करना।
- चयनित क्षेत्रों में बुनकरों के लिए सरकारी योजना और उसके अनुपालन की समीक्षा करना।
- लॉक डाउन के समय केंद्र और राज्य सरकार के राहत कार्यक्रम का मूल्यांकन करना और उसका बुनकरों पर प्रभाव की समीक्षा करना।
- पूर्वी उत्तर प्रदेश के बुनकर और बुनाई उद्योग के भविष्य का आकलन करना।

पृष्ठभूमि

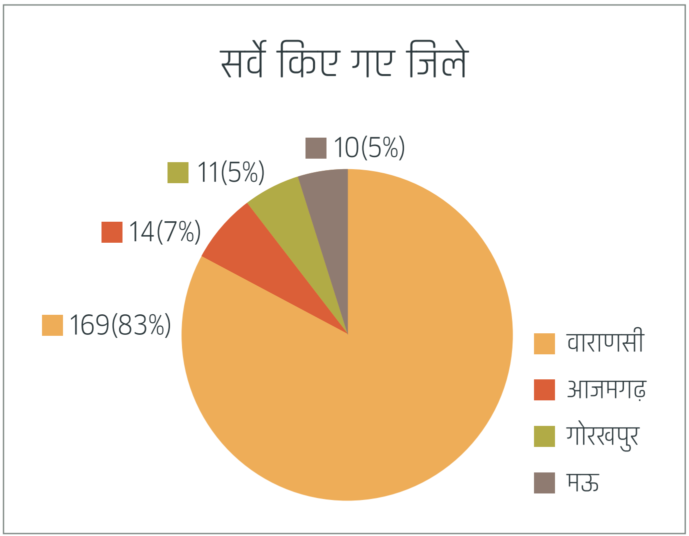

रेखा चित्र 1 : सर्वे किये गये जिले

पूर्वी उत्तर प्रदेश के 4 जिलों का सर्वे किया गया और संरचित साक्षात्कार सूची के द्वारा 204 लोगों का विस्तृत डेटा जुटाया गया।

सर्वे किये गये 204 लोगों में 169 (83 प्रतिशत) बनारस के थे। बनारस में लल्लापुरा, मदनपुरा, नक्की घाट, बड़ीबाज़ार, बजरडीहा, जलालीपुरा, रेवरी तालाब, सर्राइया, पुराना पुल, चौहट्टा,कोयला बाजार, शिवाला, सराई मोहाना और लोहता में सर्वे किया गया।

कुल 204 उत्तर-दाताओं में 14 (7 प्रतिशत) आजमगढ़ (मुबारकपुर, इब्राहिमपुर, शाहपुर, अकबरपुर, नयापुरा) के, 11 (5 प्रतिशत) गोरखपुर (रसूलपुर, गोरखधाम, पुराना गोरखपुर) के और 10 (5 प्रतिशत) मऊ (घोषी, करिमुद्दीनपूरा, मलिकपुरा, बड़ागाँव) के थे।

सर्वे के लिए बनारस के चयनित जगहों की पृष्ठभूमि

जलालीपुरा

स्थान	:	बनारस जिला की उत्तर विधानसभा
कुल आबादी	:	20,000 से 22,000
मुसलमान बुनकर	:	8,000 से 10,000
हिंदू बुनकर	:	7,000 से 9000 शेष अन्य रोजगार में

स्कूल :

एक सरकारी प्राथमिक स्कूल और आठवीं कक्षा तक के हिंदी और अँग्रेजी माध्यम के 8 निजी स्कूल है।

6 मदरसा है जिसमे 2 पंजीकृत है और 4 निजी है।

अस्पताल

एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र है जहाँ आंगनवाड़ी केंद्र चलता है। इलाके से 4 किलोमीटर की दूरी पर शिव प्रसाद गुप्ता सरकारी अस्पताल (कबीर चौरा अस्पताल) है।

बड़ी बाज़ार

स्थान	:	ज़्यादातर हिस्सा बनारस के उत्तरी विधानसभा में आता है। कुछ हिस्सा दक्षिण विधानसभा में आता है।
कुल आबादी	:	2.5 लाख
मुसलमान बुनकर	:	2 लाख

शेष 50,000 अन्य रोजगार में हैं

स्कूल :

दो सरकारी प्राथमिक विद्यालय और कक्षा 8 वी तक के हिंदी और अंग्रेज़ी माध्यम के 4 निजी स्कूल।

4 पंजीकृत मदरसे और 6 निजी मदरसे हैं।

इस इलाके में 12 वीं कक्षा तक की पढ़ाई के लिए मदरसा दारुल–उलूम और जूनियर हाई स्कूल तक की पढ़ाई के लिए मदरसा मज़ारुल–उलूम है।

अस्पताल :

इलाके में आज़ाद बुनकर और जामिया अस्पताल नाम से दो चेरिटी हॉस्पिटल है।

श्री शिव प्रसाद गुप्ता सरकारी अस्पताल इस इलाके से तीन किलोमीटर की दूरी पर है।

सराइया

स्थान	:	बनारस जिला के उत्तर विधानसभा
कुल आबादी	:	लगभग 25,000
मुसलमान बुनकर	:	20,000 से 22,000
गैर–मुसलमान बुनकर	:	1,000 से 2,000

स्कूल :

इस इलाके में कोई सरकारी स्कूल नहीं है।

तीन प्राथमिक निजी स्कूल है।

दो पंजीकृत मदरसा और दो निजी मदरसा है।

अस्पताल :

इलाके में कोई अस्पताल नहीं है।

नक्की घाट

स्थान	:	बनारस जिला का उत्तरी विधानसभा
कुल आबादी	:	लगभग 25,000 से 28,000
मुसलमान बुनकर	:	लगभग 7,000
गैर–मुस्लिम बुनकर	:	लगभग 1,000

स्कूल :

यहाँ एक सरकारी प्राथमिक स्कूल और एक निजी प्राथमिक स्कूल है।

यहाँ ऑल इंडिया माइनोरिटी बोर्ड से मान्यता प्राप्त मदरसा और एक निजी मदरसा है।

अस्पताल :

यहाँ एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र है जहाँ आंगनवाड़ी चलता है।

आम तौर पर लोग 3 किलोमीटर दूर बुनकर अस्पताल और जामिया अस्पताल जाते है

सरकारी शिव प्रसाद गुप्ता अस्पताल 4 किलोमीटर दूर है। 6 निजी स्कूल है।

यहाँ दो अर्ध–सरकारी मदरसा है और तीन निजी मदरसा है।

अस्पताल :

यहाँ कोई सरकारी अस्पताल नहीं है।

लेकिन यहाँ से आधा किलोमीटर की दूरी पर मुस्लिम ट्रस्ट द्वारा संचालित जनता अस्पताल है। यहाँ गरीब लोग नाममात्र पैसा में इलाज करवाने के लिए जाते हैं। शेष लोग निजी डॉक्टर और अस्पताल जाते हैं।

रेवाड़ी तालाब

स्थान	:	केंट विधानसभा
कुल आबादी	:	20,000 से 30,000
मुसलमान बुनकर	:	70-75%
हिन्दू बुनकर	:	25-30%

स्कूल :

यहाँ एक प्राथमिक सरकारी स्कूल और एक कॉलेज है (बंगाली टोला इंटर कॉलेज)।

लल्लापुरा

स्थान	:	बनारस जिला के दक्षिण और कैंट विधानसभा में आता है।
लल्लापुरा में तीन वार्ड है	:	लल्लापुरा खुर्द, काजीपुरा खुर्द और लल्लापुरा कला
कुल आबादी	:	60,000 से 70,000
मुसलमान	:	40,000 से 42,000
हिन्दू	:	28,000 से 30,000

यहाँ 38 से 40 हजार मुसलमान बुनकर हैं।

स्कूल :

लल्लापुरा में कोई सरकारी स्कूल नहीं है

यहाँ दो निजी स्कूल है, एक कक्षा 12वीं तक और दूसरा 8वीं कक्षा तक।

यहाँ एक मान्यता प्राप्त मदरसा है

अस्पताल :

लल्लापुरा में कोई सरकारी अस्पताल नहीं है।

सबसे नजदीक सरकारी अस्पताल 6-7 किलोमीटर दूर है।

सड़क किनारे कई निजी अस्पताल है जो महंगे हैं।

इस इलाके में 25 आंगनवाड़ी कर्मचारी काम करती हैं।

प्रमुख समस्याएँ :

स्ट्रीट लाइट नहीं है।

कोई सरकारी स्कूल और सरकारी अस्पताल नहीं है।

निजी अस्पताल और निजी स्कूल गरीब परिवारों के आर्थिक सामर्थ से बाहर है।

बुनकरों द्वारा रियायति दर पर बिजली की मांग नाला निकाशी की नाकारा व्यवस्था

लोहता

स्थान	:	शिवपुर विधानसभा। यह चार भागों में बंटा है, लोहता गरम सभा, धन्नीपुरा, महमूदपुर और कन्नीसराई।

लोहता ग्रामीण क्षेत्र है और यह शहर के बाहरी छोर पर है। यह बनारस शहर से 18-20 किलोमीटर दूर है।

कुल आबादी	:	2 से 2.5 लाख
मुसलमान बुनकर	:	75 से 80%
हिंदू बुनकर	:	20 से 25%

स्कूल:

इलाके में 5-6 सरकारी प्राथमिक स्कूल है और एक सरकारी जूनियर स्कूल है।

इलाके में कोई कॉलेज नहीं है।

6-8 निजी स्कूल और एक मदरसा है।

अस्पताल :

यहाँ दो प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और तीन निजी अस्पताल है।

3 किलोमीटर दूर एक जच्चा-बच्चा केंद्र है।

बजरडीहा

स्थान : केंट विधानसभा

केंट विधानसभा में 4 वार्ड

कुल आबादी : 2 लाख

मुसलमान बुनकर : 75 से 80%

हिंदू बुनकर : 0 से 25%

स्कूल :

यहाँ एक सरकारी प्राथमिक स्कूल और 16 से 18 निजी स्कूल है।

यहाँ 12-15 निजी मदरसा है।

अस्पताल :

बजरडीहा में कोई सरकारी अस्पताल नहीं है।

सड़क किनारे 15-16 निजी अस्पताल, नर्सिंग होम और निजी क्लीनिक है, इनमे ज़्यादातर के मालिक गैर मुसलमान हैं।

शिवाला

स्थान : कैंट, विधानसभा

कुल आबादी : 35,000 से 40,000

हिंदू : 70 से 72% आबादी

मुसलमान : 28 से 30%

मुसलमान आबादी का 22 से 25 प्रतिशत बुनकर हैं और जरदोजी का काम करते हैं।

स्कूल :

एक सरकारी प्राथमिक स्कूल और 6-7 निजी अँग्रेजी और हिंदी माध्यम के स्कूल है।

अस्पताल :

शिवाला के नजदीक में स्वामी विवेकानंद अस्पताल और माता आनन्दमयी अस्पताल है।

सरायमोहना

स्थान : बनारस जिला की अजगरा विधानसभा

सराई मोहाना कोटवा, कोनिया और खलिसपुर गाँव से घिरा है।

कुल आबादी : 12,000

सरायमोहना में अब बहुत कम बुनकर रह गए हैं। सब लोग कुछ ना कुछ काम कर रहे हैं, लेकिन अधिकांश लोग रोजाना दिहाड़ी पर काम करते हैं।

यहाँ अधिकांश लोग मल्लाह समुदाय के हैं जो मछ्ली बेचने का काम करते हैं।

स्कूल :

यहाँ एक सरकारी प्राथमिक स्कूल है और तीन निजी स्कूल है।

अस्पताल :

यहाँ सिर्फ कृष्णा मूर्ति फ़ाउंडेशन ट्रस्ट द्वारा संचालित छोटा सा संजीवनी अस्पताल है।

यहाँ स्थानीय लोग उपचार करवा सकते हैं।

कोटवा

स्थान : बनारस जिला की अजगरा विधानसभा

कुल आबादी : 14,000

कोटवा में बहुसंख्यक लोग यादव समाज के हैं।

कोटवा में अभी सिर्फ 5-6 बुनकर परिवार रहते हैं क्योंकि हथकरघा कई सालों से बंद हो गया है और लोगों के पास काम नहीं है।

पहले यहाँ 50 बुनकर रहते थे।

स्कूल :

कोटवा में एक सरकारी स्कूल है।

अस्पताल :

कोटवा में कोई सरकारी अस्पताल नहीं है।

अधिकांश लोग खेती के काम और छोटे दुकान चलाते हैं।

कोनिया

स्थान : कोनिया बनारस जिला की उत्तर बनारस विधानसभा और अजगरा विधानसभा में पड़ता है।

कुल आबादी : 18,000

मुसलमान : 5,000

शेष : मोर्या और यादव

अधिकांश लोग अन्य पिछड़े वर्ग, पिछड़ा वर्ग और दलित समुदाय के हैं।

मुख्य रोजगार खेती और सब्जी बेचना है।

महिला पहले बुनाई से जुड़े काम करती थी, वे अब बैग बनाती हैं।

पहले बहुत सारे मुस्लिम महिला बुनकर थी, लेकिन अब बहुत कम बचे हैं।

काम नहीं रहने के कारण ये लोग दूसरे रोजगार में चले गए।

स्कूल :

कोनिया में कोई सरकारी प्राथमिक स्कूल और कॉलेज नहीं है।

कक्षा आठवीं तक पढ़ाई होने वाली 5 निजी स्कूल है।

अस्पताल :

कोनिया से 2-3 किलोमीटर दूर पालंग शाहिद में ट्रस्ट अस्पताल है।

खालिसपुर

स्थान : बनारस जिला की अजगरा विधानसभा क्षेत्र क्षेत्र

कुल आबादी : 12,000

आबादी का बड़ा हिस्सा राजभर और मौर्या समुदाय से है।

ज्यादातर बुनाई का काम हिंदू करते हैं और दूसरे धर्म के लोगों की आबादी बहुत कम है।

राजभर समुदाय की महिलाएं अचार बनाने का काम करती है।

स्कूल :

यहाँ एक सरकारी प्राथमिक स्कूल है और तीन निजी स्कूल है।

अस्पताल :

इस इलाके में एक सरकारी अस्पताल है।

पूर्वांचल में बढ़ते सांप्रदायिक विभाजन का क्षेत्र के बुनाई उद्योग पर प्रभाव

कोविड 19 के महामारी के समय आर्थिक और सामाजिक अलगाव की विशेष परिस्थिति में भारत के मजदूर वर्ग में बढ़ते अनियमितीकरण से मजदूरों पर तीन तरफा मार पड़ी। वे भेदभाव के शिकार हुए, उन्हें आर्थिक रूप से हाशिये पर धकेल दिया गया और उन्हें काम से बाहर कर दिया गया। सभी स्तर पर काम करने वाले कारीगर और मजदूरों के साथ यह हुआ। इसका सबसे ज़्यादा असर महिला कामगारों पर हुआ। इस कारीगरी उद्योग में बड़ी मात्रा में सामाजिक और आर्थिक रूप से हाशिये पर रहने वाले मुसलमान, दलित और अन्य पिछड़े वर्ग के काम करने का भी अपना महत्व है। इस क्षेत्र के मजदूरों पर आने वाले संकट के समय सरकार की नीति संबंधी निष्क्रियता, अस्पष्टता या दुश्मनाना बर्ताव इन तबकों का राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक पटल पर इनके बेजुबां होने का लक्षण है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के इन जिलों को अलग-अलग तरह के बुनाई के काम के लिए जाना और माना जाता है। जनसंख्या में भारत के सबसे बड़े राज्य के इस क्षेत्र की अंतर-समुदाय और अंतर-जाति संघर्षो में भी हिस्सेदारी है। इनमे कुछ संघर्ष अंग्रेज़ जमाने में हुआ था और इसे औपनिवेशिक चश्मे से देखा गया। इस चश्मे से इसे देखा जाना सच्चे इतिहास से परे समझ का निर्माण करने का औज़ार बना। इतिहास की इस समझ को 1970 के दशक से चुनौती मिलना शुरू हुआ (ज्ञानेन्द्र पांडे, 1990, कन्स्ट्रकशन ऑफ कम्यूनलिजम इन कोलोनियल नॉर्थ इंडिया, पॉल ब्रास्स, 2004, द प्रॉडक्शन ऑफ हिंदू-मुस्लिम वायलेंस इन कोंटेंपोरारी इंडिया)।

1980 के दशक में मुसलमान समुदाय से कारोबारी, व्यापारी और कारीगरों के मजबूती से उभरने के कारण भी सघर्ष पैदा हुआ (1970, जुयाल बीएन, रफीक खान कम्यूनल रायोट एंड कम्यूनल पॉलिटिक्सः केस स्टडी ऑफ ए टाउन)।

इसके एक दशक बाद 1980 के दशक से 1990 के दशक के शुरुआत में बहुसंख्यकवादी सांप्रदायिक राजनीति का उभार हुआ जो भारतीय राज्य के चरित्र को ही मूलभूत रूप से बदलना चाहता है। मऊ और बनारस जैसे शहरी केंद्र सांप्रदायिक दंगों का गवाह बना (1984, रफीक खान एंड एस मित्तल, कम्यूनल वायलेंस एंड रोल ऑफ पुलिस)। ये दंगे न सिर्फ पहले के दंगों से ज़्यादा क्रूर थे बल्कि इन दंगों में वर्दीधारी राज्य की प्रतिनिधि पुलिस और पीएसी ने ज़्यादा आक्रामक और हिंसक भूमिका निभाई (डॉक्टर मुनीज़ा खान, 1991, ए रिपोर्ट ऑन द कम्यूनल रायोट इन वाराणसी)।

इस अध्ययन के पात्रों (समुदाय) पर होने वाले संस्थानिक भेदभाव और हिंसा का समय-समय पर दस्तावेज बनाया गया है। यह भेदभाव बुनियादी सुविधाओं की पहुँच से दूर रखने, सरकारी और निजी क्षेत्र में नौकरी नहीं देने और शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवा से वंचित रखने में दिखता है। व्यवस्था और संस्थानिक पूर्वाग्रहों के साये में किसी भी तरह से अपनी जिंदगी की गाड़ी चलाने वालों को क्रूर हिंसा का शिकार बनाया जाता है। यह उन्हें सबसे ज़्यादा असुरक्षित बना देता है।

इन इलाकों और यहाँ के लोगों के प्रति शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा तक पहुँच (सरकारी स्कूल और अस्पताल खोलने) के मामले में भेदभाव किया जाता है। इसके कारण यहाँ के लोगों के हाशिये की स्थिति हमेंशा बनी रहती है और सामान्यतः सरकारी सेवा तक उनकी पहुँच से बाहर रह जाती है। अल्पसंख्यक बहुल शहरी और यहाँ तक की ग्रामीण इलाके में साफ–सफाई और शौचालय को नजरंदाज किया जाता है और इन इलाकों में गंदगी का ढेर लगा रहता है। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों और यहाँ तक जिला अस्पतालों की स्थिति भी बदतर है। एक नागरिक होने के नाते लोग सरकार से सम्मानजनक और सुरक्षित ज़िंदगी को सुनिश्चित करने के लिये बुनियादी और मूलभूत सुविधा मुहैया कराने की उम्मीद करते हैं। सरकार द्वारा इस उम्मीद को पूरा नहीं करने की स्थिति में इस समुदाय को सरकार पर भरोसे की चोट पहुंची है और वे इसके साथ अपनापन महसूस नहीं करते हैं।

2020 और उसके बाद लॉक डाउन के कारण बुनकर समुदाय को काम मिलना बहुत कम हो गया और गुजर–बसर नहीं कर पाने की नौबत आ गई। इस स्थिति में कुछ लोगों ने बुनाई का काम छोड़कर चाय की दुकान या अन्य दिहाड़ी के काम करने लगे और कुछ लोगों ने ना–उम्मीदी में आत्महत्या कर ली। इस त्रासद और तकलीफ़दायक स्थिति में मुसलमान समुदाय पर उत्तर प्रदेश पुलिस का भेदभाव खुलकर सामने आया। बहुसंख्यक समुदाय की दुकानों को खोलने दिया गया लेकिन अल्पसंख्यक समुदाय की दुकानों को जबरन बंद किया गया।

हमें सरकार की बहु प्रचारित योजनाओं में बड़े स्तर पर आंकड़ों में घालमेल करने का पता चला। उदाहरण के लिये 2017 में महात्मा गाँधी बुनकर बीमा योजना को कमज़ोर करने से बुनकर समुदाय की सामाजिक सुरक्षा पर घातक मार पड़ी।

इस रिपोर्ट में प्रस्तुत किए गए विश्लेषण और आंकड़े चिंता का सबब है। राज्य सरकार तथा प्रशासन के प्रति बुनकर समाज का भरोसा इतना कम है की कुछ विश्लेषणों में इसे पूरी तरह से नदारद पाया गया। सर्वे में हिस्सा लेने वालों में 89 प्रतिशत ने सरकार की राहत योजना जैसे राशन, जन धन खाते में सरकार द्वारा दिये जाने वाले पैसे की मदद या बिजली का ग़लत बिल या बिजली में रियायती दर लेने या नाला निकासी के समस्या के लिए सरकार और प्रशासन के पास नहीं गए या जा पाये। शेष छोटा हिस्सा जिसने सरकार को गुहार लगाई उन्हें कोई राहत नहीं मिली और वे प्रशासन के रवैये से संतुष्ट नहीं हुए।

पहली मई, 2016 को शुरू की गई केंद्र सरकार की प्रधानमंत्री उज्जवला योजना न सिर्फ सरकार की प्रमुख योजना है बल्कि इस योजना के प्रचार–प्रसार में सरकारी कोष से करोड़ों रूपया उड़ाया गया। इस योजना के व्यापक प्रचार के बावजूद हमारे विस्तृत सैंपल में सिर्फ 21 महिला यानी सैंपल के सिर्फ 10 प्रतिशत महिला का इस योजना में पंजीकरण होने की बात सामने आयी जिन्हें योजना के तहत गैस मिल सकती है। शेष 90 प्रतिशत महिलाओं का पंजीकरण नहीं हो पाया। इन महिलाओं ने पंजीकरण करने की पूरी कोशिश की, पिछले 1–2 साल में इन महिलाओं ने 4–5 बार पंजीकरण का फॉर्म भी भरा। लेकिन इनके हाथ कुछ नहीं लगा। यही हाल बहु प्रचारित प्रधानमंत्री जन धन योजना का हुआ। इस योजना के तहत जरूरतमंदो के लिए बैंक खाता खोला गया जिससे सरकार लोगों को आर्थिक मदद, सीधा उनके खाते में पैसा डाल कर कर सके। सर्वे में हिस्सा लेने वाले सभी लोगों ने बताया की उन्होंने खाता खोलने के लिए लाइन में इंतजार किया, लेकिन उन्हें कुछ हासिल नहीं हुआ। 52 प्रतिशत लोग तो बैंक खाता भी नहीं खोल पाये। खाता खोलने वालों में 58 प्रतिशत लोग ही ऐसे थे जिनके खाते में दुबारा पैसा आया यानि एक बार से अधिक पैसा आया।

बनारसी साड़ी की चकाचौंध और हथकरघा तथा पावरलूम के आकर्षण के पीछे एक समुदाय का हुनर और मेहनत है। ये लोग मुसलमान अंसारी समाज, दलित समाज, अन्य पिछड़े वर्ग और मुसलमानों के कुछ उच्च जाति से आते हैं। आज यह पूरा बुनकर समाज पूरी तरह से गरीबी के शिकंजे में आ गया है और वे नजरों से ओझल हो चुके हैं। (2019, वर्ल्ड ऑफ बनारस वीवर, रमन)। राजनीति और आर्थिक नीति तथा निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने के लिए मुखर और जानकारी से लैस जन संवाद की ज़रूरत है।

व्यापारिक मीडिया खासकर टेलीविजन चैनलों की विभाजनकारी विमर्श को आगे बढ़ाने में बड़ी भूमिका रही। इन चैनलों की खबरें न सिर्फ झूठी थीं बल्कि इनका मकसद संविधान विरोधी एजेंडा को आगे बढ़ाना था जिसके अंजाम में पूरे अल्पसंख्यक जिसमें बुनकर समुदाय भी शामिल है, को जिल्लत और तकलीफ़ों का सामना करना पड़ा। सर्वे में हिस्सा लेने वालों में उल्लेखनीय संख्या में लोगों ने अपने पड़ोस में आर्थिक

बहिष्कार का सामना करने के बारे में बताया। टेलीविजन में जान बूझकर महामारी के पैर पसारने के कुछ दिन और सप्ताह में इसे एक समुदाय के साथ जोड़ दिया और ऐसा करने के लिए “कोरोना जिहाद” और महामारी का सुपर स्प्रेडर जैसे शब्दों का उपयोग किया गया।

2014-2022

पूर्वांचल के चार जिलों के बुनकर/ कारीगरों पर सीजेपी का तथ्य अनुसंधान रिपोर्ट 2020 में आई। यह रिपोर्ट पूर्वांचल की राजनीति के मानचित्र में महत्वपूर्ण बदलाव होने के पूरे साढ़े 6 साल बाद आई। हालांकि भारतीय जनता पार्टी राज्य में पहली बार 1991 में सत्ता में आई थी। बीजेपी की सत्ता में आने के पीछे जातीय समीकरण को सफल रूप में साधने का अभियान और 1991 में क्रूर सांप्रदायिक दंगों का होना है। सांप्रदायिक दंगों का यह सिलसिला 6 दिसंबर, 1992 में बाबरी मस्जिद को तोड़ने के बाद फिर शुरू हुआ। भेदभाव पूर्ण शासन को एक तरफ मुसलमानों को सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक परिदृश्य से अदृश्य कर देने और दूसरी तरफ खुल्लम खुल्ला बहुसंख्यकवाद से स्वीकृति मिली। यह रुझान 2014 के बाद से और स्पष्ट रूप से दिखने लगा क्योंकि अन्य कुछ पहलुओं के साथ भारतीय प्रजातंत्र को हिंदू राष्ट्र बनाने का सांस्कृतिक बिगुल भी फूंका गया। बनारस से नरेंद्र मोदी का लोकसभा सदस्य बनने और उनके द्वारा विश्वनाथ मंदिर में जीत का धार्मिक-सांस्कृतिक प्रदर्शन भारतीय राजनीति के परिवर्तन चक्र की शुरुआत है।

अब यह सांस्कृतिक वर्चस्व फ़ैज़ाबाद–अयोध्या के राम मंदिर पर कार्यक्रम के लिए राज्य के वित्तीय पोषण में दिखता है। इसे आगे बढ़ाते हुए अब वाराणसी के विश्वनाथ मंदिर को वर्चस्व के प्रतीक के रूप में जश्न मनाया जाएगा। नए सिरे से गढ़े जाने वाले कथन को स्थापित करने की कोशिश में पिछले दो सालों में बनारस के पारंपरिक घर घर में चलने वाला बुनाई उद्योग, व्यापार, गली और मंदिर तोड़ दिया गया है और तोड़ा जा रहा है। विरासत ख़त्म की जा रही हे।

दो साल बाद, नवम्बर 2016 में भारत के अनौपचारिक अर्थव्यवस्था और खासकर बनारस के बुनाई उद्योग को नोटबंदी के रूप में पहला बड़ा झटका लगा। नीति बनाने वाले बनारस के बुनाई के कथित आकर्षक पहलू को देश के दूसरे भागों में ले जाने की तैयारी कर रहे थे।

इन सभी कारकों को समझने और विश्लेषण करने की ज़रूरत है। ऐसा करके हम लंबे अरसे से सामाजिक-राजनीतिक बहिष्कार का सामना करते आ रहे बुनकर समाज पर होने वाले प्रभाव को समझ पाएंगे।

सावधानी से डेटा जुटाने के बाद तैयार की गई इस रिपोर्ट की तफ़सीली और तटस्थ ब्यौरा, 21वीं सदी के भारत की धूमिल तस्वीर को सामने लाता है। 2022 के शुरू में होने वाले राज्य के विधानसभा चुनाव के मद्देनजर बुनकर समाज की मांग और सिफ़ारिशों पर शायद ही कोई ध्यान दे। इसे लोगों के ध्यान में लाने को सुनिश्चित करने के लिए सामूहिक रूप से बहुत कुछ करने की ज़रूरत है।

[1]

https://www.sabrangindia.in/article/banaras-unique-rolling-credit-system-paralysed-de-monetization;

https://thewire.in/economy/varanasi-silk-industry-demonetisation;

https://www.livemint.com/Politics/BHUXH59k2Z1YANffG64AQO/The-rise-and-fall-of-the-Banarasi-handloom-Saree.html

जनसंख्याकी का विश्लेषण

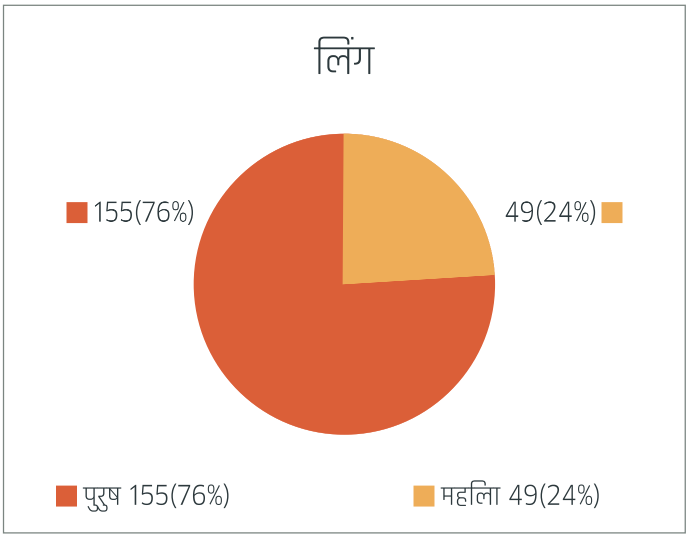

चित्र 2 : लिंग

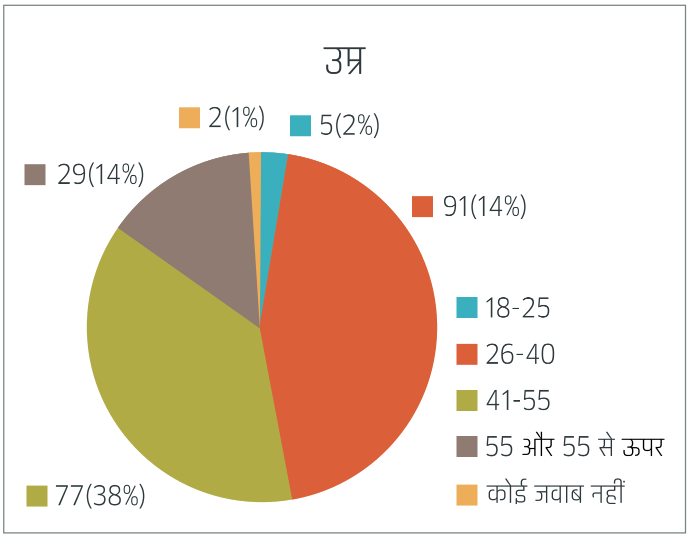

चित्र 3: उम्र

रेखाचित्र 2 के अनुसार सर्वे में हिस्सा लेने वाले उत्तर प्रदेश के 4 जिलों में 24 प्रतिशत महिला थीं और 76 प्रतिशत पुरुष। बुनाई उद्योग में महिलाओं की अहम भूमिका है। महिलाएं बुनाई प्रक्रिया में अपने पतियों को नरी भरके, धागा कटाई और साड़ी की सजावट का काम करके मदद करती हैं।

हमने महिलाओं को मऊ और आजमगढ़ में बुनाई का काम करते हुए पाया। मऊ जिले के घोसी और आजमगढ़ के मुबारकपुर में महिलाएं वर्षों से अपने घरों में हथकरघा और पावरलूम पर बुनाई का काम करती आ रही हैं। सच्चाई ये है की महिलाएं लूम चलाती हैं, घर संभालती हैं और पुरुष लूम की मरम्मत करने और बुनाई सामग्री खरीदने का काम करते हैं।

बनारस में महिलाएं बुनाई नहीं करती हैं लेकिन वे बुनाई से जुड़े दूसरे काम करती हैं। महिलाएं ज़्यादातर बुनाई काम के लिए तैयारी के काम और बुनाई के बाद के कामों को करती हैं। इन कामों में नरी भरना, सजावट के लिए टिकली, गोटा, मोती, सितारा लगाना, फिनिशिंग करना, सिलाई करना, चुनरी पर काम करना आदि है। ये दुर्भाग्य है की महिलाओं को नरी भरने के काम के लिए कोई पैसा नहीं मिलता है क्योंकि इसे घरेलू काम समझा जाता है। करघे के काम में महिलाओं की बड़ी भूमिका है क्योंकि ये उनका परंपरागत काम रहा है। यह श्रम का पारंपरिक विभाजन है जिसमें महिलाओं को बगैर भुगतान के काम करना पड़ता है।

.

चित्र 3 में सर्वे में हिस्सा लेने वालों की उम्र दिखाई गई है। इनमें 5 लोग (2%) 18–25 साल के उम्र समूह में थे। लगभग आधे उत्तर दाता, 91 (45%) 26–40 साल के उम्र समूह के थे। 41–55 साल के उम्र समूह के 77 लोग (38%) थे। कुल मिलाकर 83 प्रतिशत लोग 26–55 साल के उम्र समूह के थे।

29 उत्तर दाता (14%) 55 साल या उससे ज़्यादा उम्र के थे। सबसे ज़्यादा उम्र दराज व्यक्ति 85 साल के थे। 2 लोगों को अपने उम्र के बारे में कुछ नहीं बताना था।

ये कहना उचित होगा की मूल सर्वे में पूर्वी उत्तर प्रदेश के बुनकरों के सबसे ज़्यादा उत्पादक उम्र के लोगों को शामिल किया गया है।

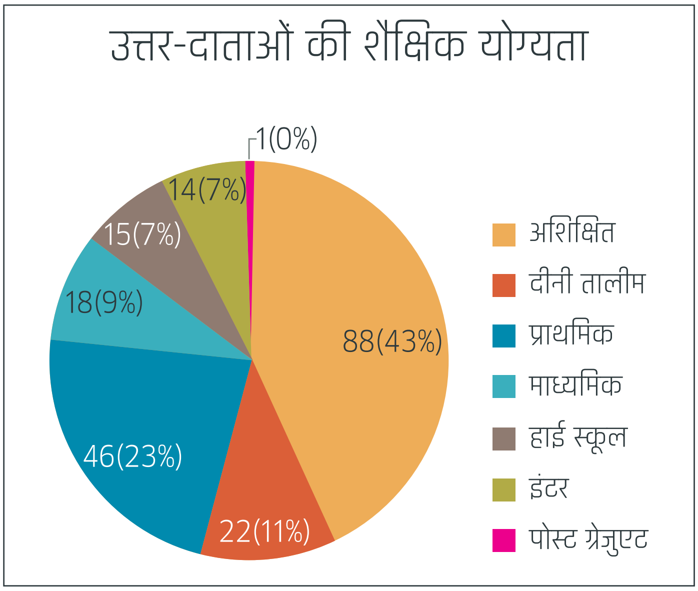

चित्र 4: सर्वे में हिस्सा लेने वालों के शैक्षणिक स्तर

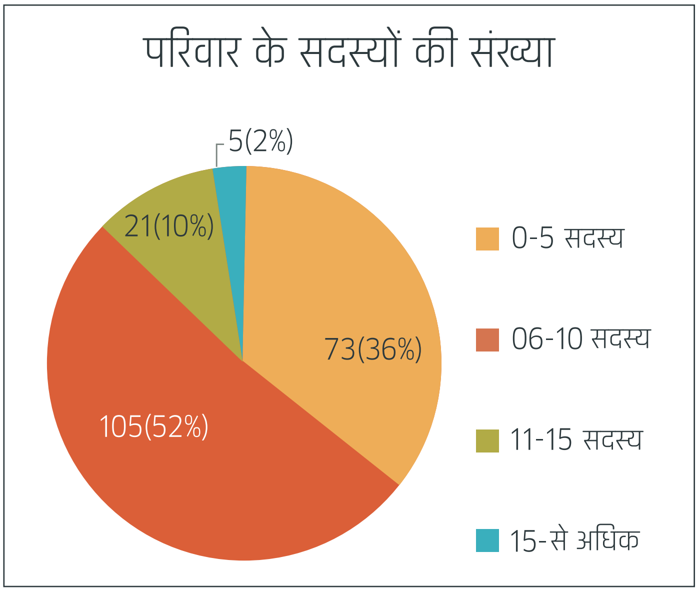

चित्र 5: परिवार के सदस्य संख्या

चित्र 4 में उत्तर दाताओं के शैक्षणिक स्तर को दिखाया गया है। इसके अनुसार 88 (43%) लोग निरक्षर हैं, हालांकि वे अति–कुशल कारीगर हैं और उन्हें अपने पारंपरिक काम के बारे में पूरा ज्ञान है। इस काम को वे कई दशकों से करते आ रहे हैं।

22 (11%) लोगों ने दीनी तालीम (मुसलमानों में धार्मिक शिक्षा) लिया है। इसका मतलब ये लोग मदरसा गए हैं।

46 (23%) उत्तर दाता प्राथमिक स्तर तक (कक्षा 5 वीं) शिक्षा लिए हैं। सर्वे में हिस्सा लेने वालों में 18 (9%) ने सेकंडरी यानी कक्षा 8वीं तक की पढ़ाई की है। 15 (7%) लोगों ने स्कूली शिक्षा (कक्षा 10) पूरी की है। 14 लोगों (7%) लोगों ने 12वीं तक पढ़ाई की है। एक आदमी उर्दू से एम. ए. पूरा किया है।

सर्वे में हिस्सा लेने वालों में 73 (36%) लोगों के परिवारों में 5 या उससे कम सदस्य हैं।

105 लोगों (52 %) के परिवारों में 6 से लेकर 10 तक सदस्य हैं। हमने देखा है की 43 प्रतिशत लोग निरक्षर हैं। इससे लगता है की निरक्षर लोगों में परिवार के बारे में बहुत कम जागरूकता है या बिलकुल नहीं है।

21 (10%) लोगों के परिवारों में 11–15 सदस्य हैं। यह दो कारणों से हो सकता है। एक इन लोगों में परिवार नियोजन के बारे में जागरूकता नहीं है या ये लोग संयुक्त परिवार में रहते हैं।

5 (2%) लोगों के परिवारों में 15 से ज़्यादा सदस्य हैं।

बुनाई में महिलाएं : उनकी अधीनता को परस्पर जुड़े हुए लेंस के माध्यम से देखना

सामाजिक संघर्ष या राज्य द्वारा शुरू किए गए संघर्ष में लैंगिक पहलुओं पर विशेष रूप से ध्यान देने की ज़रूरत है। अल्पसंख्यक, मुसलमान और दलित महिला/लड़कियों को तीन स्तरीय भेदभाव और वंचना का सामना करना पड़ता है। पहला, उन्हें वंचित समाज के होने के कारण आर्थिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है। दूसरा उन्हें सामुदायिक पहचान के कारण भेदभाव का सामना करना पड़ता है। तीसरा, लेकिन महत्वपूर्ण उन्हें महिला/लड़की होने के कारण परिवार और समुदाय के पितृसत्ता द्वारा कुचल दिया जाता है।

इस रिपोर्ट में हमने बुनाई के काम में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए बुनकरों की स्थिति को लैंगिक संवेदनशीलता के लेंस से पड़ताल करने की कोशिश की है। बुनाई के काम में महिला कारीगर और मजदूर सतह पर नहीं दिखती हैं जबकि "उस्ताद बुनकर" और इससे जुड़ी दुनिया में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

इस बात को ध्यान में रखते हुए हमने सर्वे के लिए महिलाओं का चयन किया ताकि उनके सरोकारों को प्रतिनिधित्व मिल सके। वे इसकी हकदार हैं। हमारे सर्वे के सैंपल में 24 प्रतिशत महिलाएं और लड़कियां हैं। उनकी दास्ताँ में कुपोषण और उससे जुड़ी स्वास्थ्य समस्या के अलावा आर्थिक बदहाली, भूख और अनियंत्रित घरेलू अत्याचार का दुखद वर्णन है।

हमारे अध्ययन में राहुल सांस्कृतायन और कैफी आज़मी के जन्म स्थल आजमगढ़ शामिल है। सर्वे के आंकड़ों के अनुसार इस जिले में 60 प्रतिशत महिलाएं और 52 प्रतिशत बच्चे अनेमिया के शिकार हैं। लॉकडाउन के विशेष प्रभाव के कारण लड़कियों के स्कूल और पढ़ाई छोड़ने की घटनाएं बढ़ी हैं। इसके अतिरिक्त महिला और लड़कियों को घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता है।

बुनाई के काम में नरी भरने, एम्ब्रोईडेरी, मोती–सितारा लगाने और साड़ी या कपड़े की कटिंग करके फिनिशिंग करने जैसे ज़रूरी काम करने के बावजूद महिला बुनकर का अस्तित्व शायद कल्पना में भी नहीं आता है। वास्तव में बहुत सारी महिलाएं करघे पर भी काम करती हैं।

जांच के दौरान हमारे टीम को घोसी (मऊ) और मुबारकपुर (आजमगढ़) में महिलाओं द्वारा घर पर हथकरघे और पावरलूम पर बुनाई का काम करने के बारे में पता चला। महिलाएं लुंगी, ब्लैंकेट, कफ़न बनाने से लेकर साड़ी बुनने, उसकी पॉलिशिंग और फिनिशिंग का काम करने में माहिर हैं। हकीकत में महिलाएं बुनाई के काम के साथ घर संभालती हैं और पुरुष करघा मरम्मत करने और बुनाई के लिए ज़रूरी सामान खरीदने का काम करते हैं। बनारस में महिलाएं सीधे तौर पर बुनाई का काम नहीं करती हैं लेकिन बुनाई के काम के लिए तैयारी करने के काम जैसे नरी भरने और बुनाई के बाद के काम जैसे

सजावट के लिए टिकली लगाना, मोती-सितारा का काम, पॉलिशिंग, फिनिशिंग जैसे सभी ज़रूरी काम करती हैं। इनमें अधिकांश काम को काम के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है और इन कामों के बदले महिलाओं को पैसा भी नहीं दिया जाता है। अन्य कई तरह के कामों की तरह बुनाई में भी महिलाएं ज़रूरी काम बगैर भुगतान के करती हैं।

पिछले 3 दशकों से जारी लक्षित सांप्रदायिक हिंसा की क्रूरता और राजनीति का महिलाओं पर विशेष तौर से प्रभाव पड़ा है। इसकी सबसे ज़्यादा शिकार मुसलमान महिलाएं हुई है। वर्चस्ववादी बहुसंख्यकवाद 1990 के

दशक से बहुसंख्यक समुदाय की महिलाओं को आक्रामक रूप से गोलबंद कर रहा है। (1993, तीस्ता सेतलवाड़, वुमेन एंड द हिंदू राइट)।

90 के दशक के शुरुआती वर्षों में बहुसंख्यक समुदाय की महिलाओं के द्वारा अल्पसंख्यक समुदाय की महिलाओं और पुरुषों पर आक्रामक रूप से हमला करने की घटनाएँ दर्ज होने लगीं। (1991, सेतलवाड़, अहमदाबाद, 1991, बिजनेस इंडिया, सनडे ऑवजर्भर, बॉम्बे 1992-93, सेतलवाड़, सनडे ऑवजर्भर)।

बाबरी मस्जिद को तोड़े जाने के बाद 6-7 दिसंबर, 1992 में सूरत की मुसलमान महिलाओं और लड़कियों को अमानविक यौन हिंसा का शिकार बनाया गया। मुंबई में 1992-93 में तीन घटनाएं हुईं जिसमें पड़ोसी महिलाओं ने अल्पसंख्यक समुदाय के महिलाओं पर हो रहे यौन हिंसा का विकृत रूप से उपभोग किया। 2002 का गुजरात नरसंहार इसे पूरी तरह से अलग स्तर और आयाम तक ले गया। द कंसर्ण्ड सिटीजंस ट्राइबूनल, क्राइमस एगेन्स्ट ह्यूमेनिटी, गुजरात ने इसका दस्तावेज बनाया है। इसने नफ़रती लेखों और नफ़रती भाषणों के दस्तावेज बनाने के साथ मुसलमान महिलाओं और लड़कियों पर लक्षित हिंसाओं का भी दस्तावेज बनाया। लैंगिक पहचान के सांप्रदायिक विभाजन ने लैंगिक एकजुटता को बुरी तरह से प्रभावित किया। लैंगिक एकजुटता भारत में महामारी के समय विभाजन और बहिष्कार की जो दीवार खड़ी हुई है, को तोड़ डालने में सक्षम हो सकती थी लेकिन इसके टूटने के कारण आपसी मदद और सहयोग कम हुआ। दुर्भाग्य से वंचना की गहराई का बारीक समझ नहीं बना पाये।

काम के प्रकार और अनुमानित मजदूरी

तथ्य अनुसंधान अध्ययन के समय हमने पाया की लॉकडाउन के पहले सर्वे में भाग लेने वाले लोग हथकरघा, पावरलूम पर बुनाई और करचुप पर जरदोजी का काम करते थे। महिलाएं भी नरी भरने, पॉलिशिंग, मोती-सितारा लगाने, साड़ी कटाई करने, गोटा लगाने जैसे काम करती थीं।

नीचे अलग-अलग कामों के लिए लॉकडाउन के पहले मिलने वाली मजदूरी की सूची दी गई है। लॉकडाउन के बाद काम बहुत कम हो जाने के कारण स्थिति ख़राब हो गई। लोगों को मुश्किल से काम मिल पाता तो अक्सर करघे के मालिक और उस्ताद बुनकर के उत्पादन की मांग में बहुत ज़्यादा कमी होने के कारण मजदूरी आधी कर देते।

हथकरघा मजदूरों की दर

बनारसी साड़ी की दर साड़ी के काम के अनुसार तय होती है। हथकरघे के काम में एक कुशल कारीगर होता है और उसके साथ उसका एक सहायक होता है। आप के पास हथकरघा है तो आपको अलग-अलग काम के अनुसार मजदूरी मिलेगी। एक सामान्य साड़ी को लोग 12-15 दिन लगातार रोजाना 10-12 घंटा काम करके पूरा करते हैं। इतने काम के लिए उन्हें 1800-2000 रूपया मिलता है। इसी तरह से जिस साड़ी में ज़्यादा बारीक और ज़्यादा काम रहता है उसे उतना ही रोजाना कई घंटे काम करके 18-20 दिनों में पूरा कर लिया जाता है। इस काम के एवज में उन्हें 4000-4500 रूपया मिलता है।

पावरलूम की दर

पावरलूम पर काम करने वाले मजदूरों के लिए दर तय की जाती है। काम के प्रकार के अनुसार दर तय होती है। पावरलूम के काम में बहुत भिन्नता है लेकिन मजदूरी दर लगभग एक जैसी ही है। उदाहरण के लिए तांचोई, जरीबूटी, एपएन, आधा और ब्राइट साड़ी का दर 75-90 रूपया है और काम पूरा करने के लिए 10-12 घंटे काम करने पड़ते हैं।

इसी तरह से जार्जेट, लक्षा बार्डर, टसर, बट्टर, काटन जैसी साड़ी को रोजाना 10-12 घंटे काम करके पूरा किया जाता है और इसके लिए 110-150 रूपया मजदूरी मिलता है।

जरदोज़ी काम में मजदूरी

जरदोज़ी का काम अब सिर्फ मजदूरी की तरह काम बन गया है। लोग इस काम के अंतिम रूप को देखते हैं और अक्सर इसमें लगी मेहनत को देख नहीं पाते। लॉकडाउन के पहले रोजाना 12 घंटे काम मिलता था। अब रोजाना 8 घंटे काम मिलता है। कई सारे कारखाने बंद हो रहे हैं। लोगों को जैसा भी काम मिल रहा है वह करने लगे हैं। उदाहरण के लिए साड़ी, सूट, कुर्ती, कुर्ता, शेरवानी, बैज, मुकुट या पर्स जो भी काम हो डिज़ाइन के आधार पर रेट तय होता है। लोगों को 12 घंटे काम के लिए 200 रूपया मजदूरी मिलती है।

आजमगढ़, मऊ और गोरखपुर में मजदूरी

गोरखपुर में बुनकर चादर और सुटिंग-शर्टिंग सामग्री बुनते हैं। उन्हें पावरलूम पर 8-10 घंटे काम करने के एवज में 150-200 रूपया मिलता है। उन्हें प्रति मीटर काम के लिए 3 रूपए की दर मिलती है।

मऊ में बुनकर पावरलूम पर कफ़न के कपड़े बुनते हैं। उन्हें प्रति मीटर कपड़े के लिए 25 रूपए रेट मिलता है। वे दिन में 4-5 मीटर कपड़ा बुनते हैं। इसके लिए उन्हें 8-10 घंटे काम करना पड़ता है। गोरखपुर में हर साड़ी पर उस्ताद बुनकर को कमीशन मिलता है। वे बुनने का सामग्री बुनकर को देते हैं और हर साड़ी पर 50 रूपया कमीशन लेते हैं। हालांकि ये रेट साड़ी पर निर्भर करता है।

आजमगढ़ के शाहपुर में बुनकर लुंगी बुनते हैं। शाहपुर ग्रामीण क्षेत्र है और मुबारकपुर जिले में आता है। यहाँ बुनकरों को प्रति मीटर बुनने के लिए 10 रूपया दिया जाता है। वे 8-10 घंटे काम करके 25-30 मीटर बुन पाते हैं। करघे के मालिक को लॉकडाउन से पहले प्रति लुंगी 30 रूपया मिलता था। अब मुश्किल से 10 रूपया मिलता है।

बुनाई और जरदोज़ी काम में महिलाओं की भूमिका और इसकी मजदूरी

साड़ी पर पत्थरों की नक्काशी : नक्काशी के काम में भी "भारी" और "हल्का" काम होता है। दोनों का रेट साड़ी पर निर्भर है। एक हल्की साड़ी पर नक्काशी का काम 4 घंटे में पूरा हो जाता है और इसके एवज में लोगों को 10 रूपए मजदूरी दी जाती है। भारी साड़ी पर यह काम पूरा करने में 10–12 घंटे लगते हैं और इसकी मजदूरी 25–30 रूपए है। साड़ी, पत्थर, गोंद आदि सामग्री मालिक मुहैया करता है।

फिनिशिंग काम : बनारसी साड़ी की अंतिम प्रक्रिया कटाई करना है। यह काम महिलाएं घर में करती हैं। इसमे कपड़े के उल्टेहिस्से में छूटे छोटे धागों को हाथ से काटना पड़ता है। इसके बाद साड़ी को तह लगाकर पैक किया जाता है। एक साड़ी के फिनिशिंग के काम में 20–25 मिनट समय लगता है और इसकी मजदूरी 5 रूपया है। सिर्फ हथकरघे पर बुनी गई साड़ी में फिनिशिंग काम जरूरी होता है। हथकरघे की संख्या लगातार कम होने के कारण अब फिनिशिंग काम की मांग लगभग नहीं के बराबर रह गई है।

चुनरी–दुपट्टा : चुनरी–दुपट्टा में गोटा लगाने का काम महिलाएं करती हैं। एक दिन में एक महिला 4–5 चुनरी–दुपट्टा का काम पूरा करती हैं। एक चुनरी-दुपट्टा के काम के लिए उन्हें सिर्फ 3 रूपए मिलते हैं। एक चुनरी-दुपट्टा का काम पूरा करने में 20–25 मिनट समय लगता है। गोटा, धागा, दुपट्टा, सुई मालिक मुहैया करता है।

दुपट्टा और साड़ी पर जालदार झालर टाँकने का काम : एक साड़ी पर जालदार झालर लगाने के काम में एक से डेढ़ घंटे लगता है। इस काम के लिए 10–12 रूपए मिलते हैं। उसी तरह दुपट्टे पर यह काम करने में ढेड़ से दो घंटे लगते हैं और इसके एवज में महिला को 15–18 रूपए मिलते हैं। ये काम नियमित रूप से नहीं मिलता। महिलाओं को यह काम त्योहार और शादी के समय मिलता है।

नरी भरना : : महिलाएं घर पर नरी भरने का काम करती हैं। अब यह काम मशीन से होने लगा है। गोरखपुर की युवा महिलाओं की पीढ़ी ने इस काम में बहुत कम मजदूरी मिलने के कारण यह काम करना छोड़ दिया है। इस काम में 10 घंटे से ज़्यादा काम करने के लिए सिर्फ 60–70 रूपए मजदूरी मिलती है। ये महिलाएं अब बैग सिलाई का काम करने लगी हैं। उन्हें एक बैग सिलने के लिए 1 रूपया मिलता है। वे एक दिन में 100 बैग सिलती हैं और 100 रूपए कमाती हैं।

करघा/करचुप की स्थिति /रोजगार

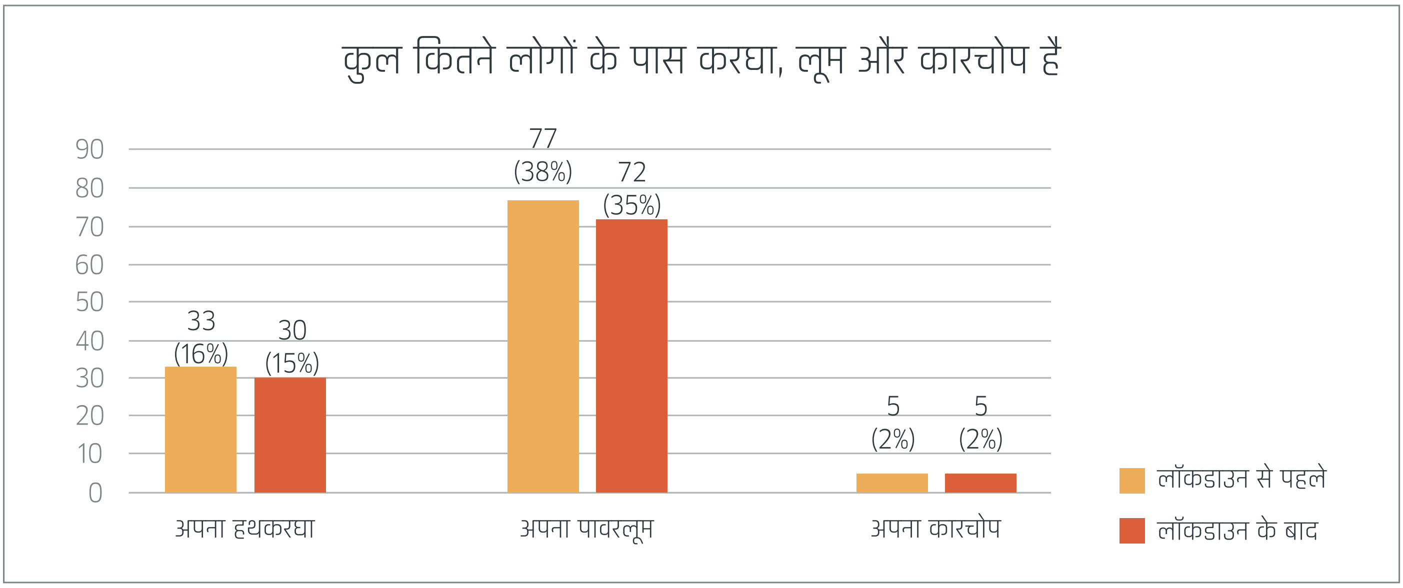

चित्र 6 : करघा/ करचुप रखने वाले लोगों की कुल संख्या

रेखाचित्र 6 के अनुसार लॉकडाउन से पहले 33 (16%) लोगों के पास करघा था, लॉकडाउन के बाद यह संख्या 30 (15%) हो गयी। 3 लोगों ने आर्थिक संकट के कारण करघा बेच दिया है। चित्र 8 में 77 प्रतिशत हथकरघे बंद होते हुए दिखाए गये हैं। इससे स्पष्ट होता है की बहुत सारे लोगों के पास हथकरघा होने के बावजूद काम नहीं चल रहा था। चित्र 6 के अनुसार लॉकडाउन के पहले 77 (38%) लोगों के पास पावरलूम था लेकिन लॉकडाउन के बाद यह संख्या घटकर 72 (35%) हो गयी। पावरलूम बेचने की कोशिश करने वाले लोगों को बहुत कम कीमत मिल रही थी, इसलिए बहुत सारे लोगों ने नहीं बेचा। लेकिन जैसा की चित्र 7 से देखा जा सकता है की लॉकडाउन के बाद 80% पावरलूम बंद हो गए थे।

लॉकडाउन से पहले 5 (2%) लोगों के पास करचुप था, किसी ने करचुप नहीं बेचा क्योंकि इसे बेचकर बहुत कम पैसा मिल सकता था।

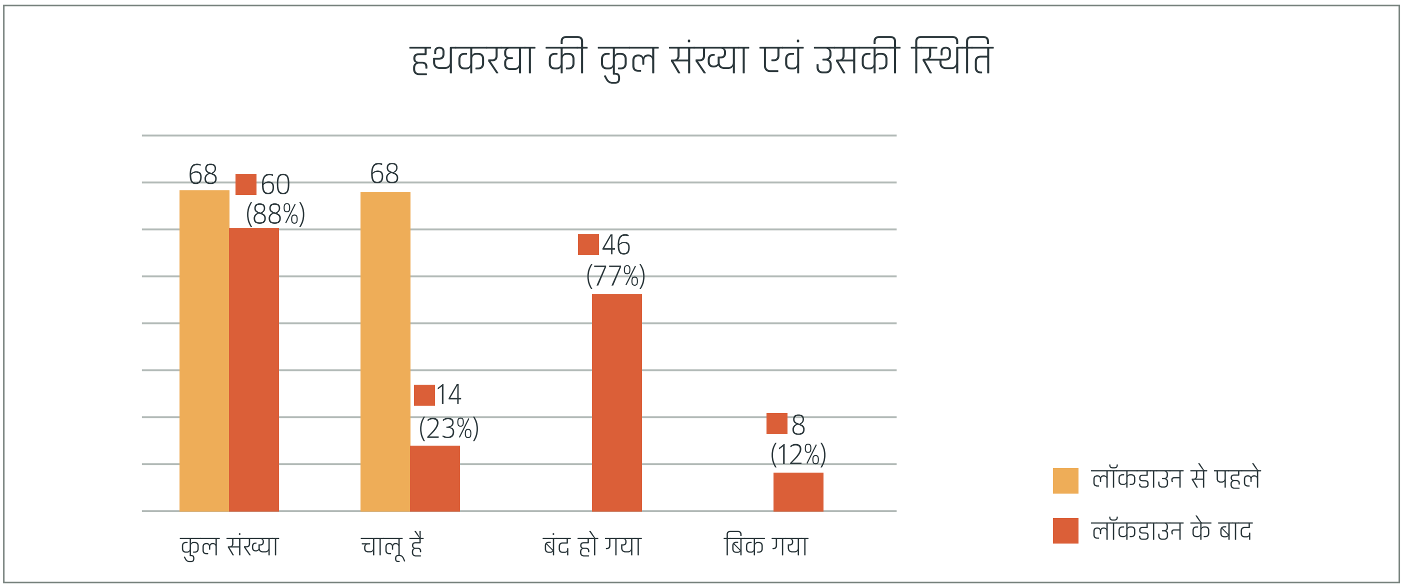

चित्र 7: हथकरघों की कुल संख्या और उनकी स्थिति

चित्र 7 के अनुसार लॉकडाउन से पहले हमारे अध्ययन क्षेत्र के सैंपल में 204 लोगों के पास 68 हथकरघे थे। लॉकडाउन के बाद ये संख्या घटकर 60 हो गई। इससे

पता चलता है की लॉकडाउन के दौरान 8 (12%) हथकरघे बेचे गए। लोगों ने बताया की उन्होंने बहुत कम दाम पर करघे बेचे। लॉकडाउन के बाद सिर्फ 14 (23%) हथकरघों पर काम हो रहा था और 46 हथकरघे (77%) बंद हो गए। लॉकडाउन के बाद बुनकरों के पास बहुत कम काम था। लोगों ने बताया की गृहस्ता ने उन्हें कहा "भाई जल्दी साड़ी मत बनाना, एक महीने बाद आना, काम नहीं है।

पहले एक बुनकर 6–7 दिनों में एक साड़ी बनाता था, अब उसके पास पूरा महीना काम नहीं रहता है।

पिछले दो दशकों से हथकरघा धीरे–धीरे ख़त्म होता जा रहा है क्योंकि ज़्यादा से ज़्यादा लोग पावरलूम (बिजली से चलने वाली करघा) की ओर मुड़ रहे हैं। लॉकडाउन से पहले भी हथकरघा बुनकरों के पास बहुत कम काम था और पावरलूम की संख्या ज़्यादा बढ़ने के कारण हथकरघे की मांग बहुत कम हो गई थी। बुनकरों को रोजमर्रा की ज़रूरतें पूरा करने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा था। लॉकडाउन के बाद स्थिति और बदतर हो गई।

रेवरी तालाब, बनारस के रहने वाले मोहम्मद शोएब के पास लॉकडाउन के पहले 12 हथकरघे थे और वे इनमें से कुछ को किराए पर देते थे। आज उनके सभी 12 हथकरघे ठप पड़े हैं। उनके करघों पर काम करने वाले बुनकर मजदूरी कर रहे हैं।

मदनपुरा, बनारस के शाहीद जमाल अंसारी के पास पहले 4 हथकरघे थे। उनके पास अब सिर्फ एक बचा है। इस पर काम करके सिर्फ इतना कमा पाते हैं जिससे उन्हें दिन में एक बार खाना मिल पाता है।

इन चंद उदाहरणों से हम समझ सकते हैं कि कोरोना महामारी के कारण लोग किस कदर आर्थिक संकट से गुजर रहे हैं और मजबूरी में उन्हें रोजगार के एक मात्र जरिये हथकरघे को बेचना पड़ रहा है।

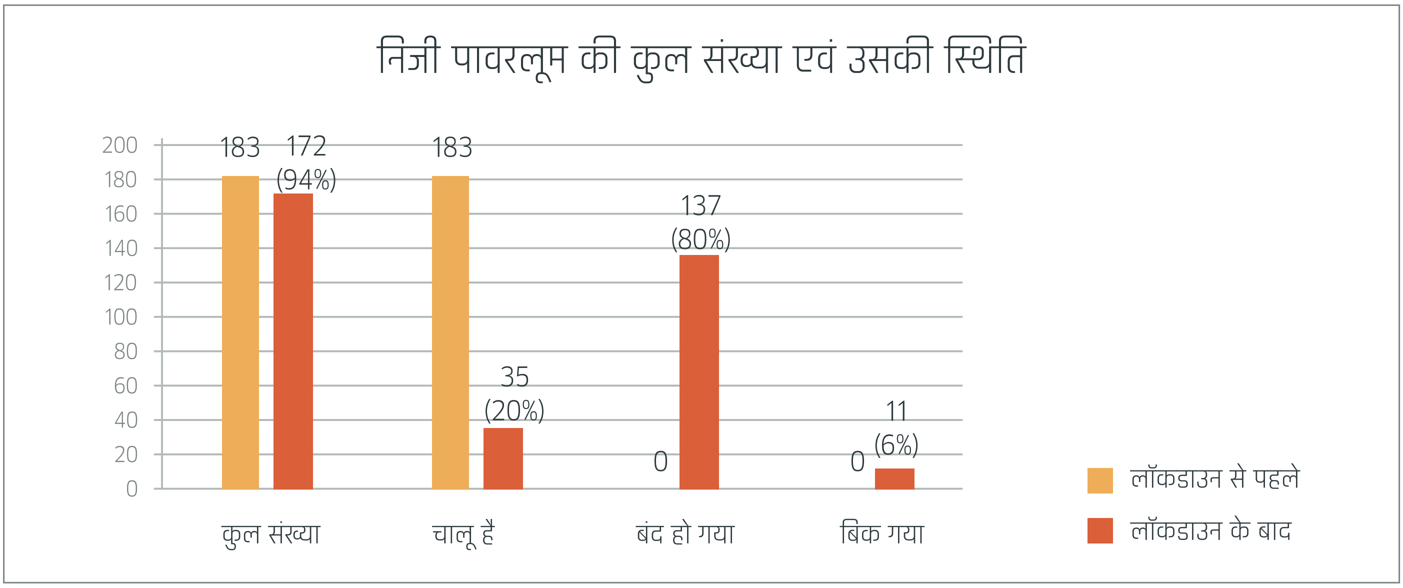

चित्र 8: पावरलूम की कुल संख्या और उनकी स्थिति

चित्र 8 के अनुसार 204 लोगों के पास लॉकडाउन से पहले 183 पावरलूम थे। लॉकडाउन के बाद 11 पावरलूम (6%) को बहुत कम दामों में बेचना पड़ा।

हामिद अंसारी रेवरी तालाब, मदनपुरा, बनारस के रहने वाले हैं। उन्होंने दिसंबर 5, 2020 को हमारे टीम के साथ बातचीत में बताया "जो पावर लूम 5 लाख का था, उसे 7000 के भाव से बेचना पड़ा"। उन्होंने आगे और बताया की उन्होंने एंब्रोईडरी कंप्यूटर मशीन पर 15 लाख रूपए निवेश किये थे, लेकिन उनके मकान मालिक ने उनसे पूछे बगैर मकान किराया और बिजली बिल वसूलने के लिए उसे बेच दिया। हामिद ने बताया "एक मशीन को 32000 रूपए में और दूसरी मशीन को 48000 रूपए में बेचा गया। लेकिन इससे हमें कोई पैसा नहीं मिला"। लॉकडाउन के पूरे समय वे मकान का किराया नहीं दे पाये थे, इसलिए उनकी मशीन को रद्दी की तरह प्रति किलो रेट से बेचा गया!

लॉकडाउन से पहले सराइया के अहमद रजा के पास 5 पावरलूम थे। लेकिन उस समय की आर्थिक तंगी के कारण उन्होंने एक पावरलूम 70000 रूपए में बेच दिया।

बड़ी बाज़ार निवासी शकील अहमद ने 4 साल पहले 62000 रूपए में एक पावरलूम खरीदा था। लॉकडाउन के समय 4 महीने तक काम पूरी तरह ठप्प हो जाने के कारण अपने परिवार को भुखमरी से बचाने के लिए उन्हें इसे सिर्फ 14000 रूपए में बेचना पड़ा। इसे कबाड़ी वाले के पास 23 रूपए किलो के हिसाब से बेचने पर उनका दिल टूट गया।

हमने बनारस के अलावा पूर्वी उत्तर प्रदेश के दूसरे जिलों में भी पावरलूम को बेचे जाने के बारे में सुना। गोरखपुर के रियाजुद्दीन के पास 10 पावरलूम थे, लेकिन मार्च महीने में लॉकडाउन के समय सभी लूम ठप्प पड़े थे। मऊ के अंसारूल के पास 4 पावरलूम थे। आजमगढ़ के अहमद अंसारी के पास 4 पावरलूम और वहाँ के आजमगढ़ से ही करिमुद्दीन के पास 5 पावरलूम थे। लॉकडाउन के समय से काम नहीं रहने के कारण सभी बंद पड़े हैं। सर्वे में हिस्सा लेने वालों में 16 लोग ऐसे थे जिनके पास लॉकडाउन से पहले 4 या उससे ज़्यादा पावरलूम थे, ये सभी या तो ठप्प पड़े हैं या आर्थिक परेशानियों के कारण इनमें से कुछ को बेच दिया गया है।

लॉकडाउन से पहले सभी पावरलूम चल रहे थे। लेकिन लॉकडाउन के समय से सिर्फ 35 पावरलूम पर काम चल रहा है। यह कुल बिजली करघा का सिर्फ 20 प्रतिशत है। कुल 137 बिजली करघे ठप्प पड़े हैं जो कुल पावरलूम संख्या का 80 प्रतिशत हैं। चलने वाले बिजली करघे भी काम की कमी के कारण नियमित रूप से नहीं चल रहे हैं।

पिछले कई महीनों से करघे बंद रहने के चलते इन्हें मरम्मत किए बगैर चलाना संभव नहीं हो रहा है। मरम्मत करने और फिर से चलाने के लिए एक बिजली करघे पर 4000-5000 रूपए और एक हथकरघे पर 5000-6000 रूपए खर्च होगा। करघे मालिकों के पास मरम्मत करने के लिए न ही पैसा है और न ही काम है।

सराइया के शाहनवाज़ पूछते है "मशीन तो बंद है, एकदम अभी पूरा जाम हो गया है। पैसा है ही नहीं की हम चालू करें। कहाँ से 5-6 हजार रूपया लाएँ"?

लॉकडाउन के समय उन्होंने बिस्कुट, टॉफी बेचना शुरू किया। उसने कहा "ये दुकान लॉकडाउन में खोला। बच्चे एकदम खाये बिना रह रहे थे। हर चीज के लिए तड़प रहे थे तो हम कहे की पूरा काम बंद है तो थोड़ा बिस्कुट, मिठाई की दुकान कर लें तो कुछ तो हमारा आँसू पोछा जायेगा। यही आँसू पोछने के लिए बिस्कुट, टॉफी और मिठाई की दुकान हमने खोल ली हैं। बच्चे छोटे-छोटे हैं"।

'हिंदुस्तान' अख़बार के बनारस संस्करण में 27 जुलाई, 2020 को बुनकरों द्वारा मजबूरी में कचड़े के भाव में बिजली करघे बेचने को लेकर रिपोर्ट प्रकाशित हई। इस रिपोर्ट में दो घटनाओं का हवाला दिया गया है :

केस स्टडी - 1

दोषीपुरा के हसन अब्बास ने 6 साल पहले 70000 रूपए में एक बिजली करघा खरीदा था। उनके परिवार में 4 सदस्य हैं जो पिछले 4 महीनों से पर्याप्त भोजन की कमी के चलते किसी भी तरह से जीवित हैं। लॉकडाउन के समय काम और मजदूरी नहीं मिलने के कारण यह परिवार भुखमरी की कगार पर खड़ा है। लॉकडाउन के समय उनकी पूरी बचत ख़त्म हो गई और वे उनकी एक मात्र पावरलूम को सिर्फ 15000 रूपए में बेचने को मजबूर हो गए।

केस स्टडी- 2

बड़ी बाज़ार के रहने वाले शकील अहमद ने 4 साल पहले 62000 रूपए में एक पावरलूम खरीदा था। 4 महीने काम बंद हो जाने की स्थिति में परिवार का भरणपोषण करने के लिए उन्होंने सिर्फ 14000 रूपए में पावरलूम बेच दिया। यह लूम नाटे भाई नाम के एक कबाड़ व्यापारी को 23 रूपए प्रति किग्रा दर से बेचा गया।

इन दोनों उदाहरणों से महामारी के समय लोगों की दुर्दशा का पता चलता है। बनारस में बुनकारों की स्थिति सभी जगहों पर इसी तरह की है। कुछ बुनकर सब्जी बेच रहें

हैं तो कुछ लोग परिवार को जीवित रखने के लिए दिहाड़ी मजदूरी कर रहें है या कुछ परिवार के गहने बेच रहे हैं। बनारस के बड़ीबाज़ार, रेवरी तालाब, सर्राइया, लल्लापुरा, बजरडीहा, लोहता और कोटवा में बुनकरों की स्थिति बहुत गंभीर हो गई है। बिजली बिल की मार भी बुनकरों पर पड़ी है लेकिन इसको लेकर उनका विरोध सरकार के कान तक नहीं पहुंचा।

दिलावर (नाटे भाई) बड़ीबाज़ार में कबाड़ व्यापारी हैं। उन्होंने बड़ी संख्या में बुनकरों द्वारा पावरलूम बेचने की बात बताई।

(स्रोत : हिंदुस्तान, तारीख 27.07.2020)

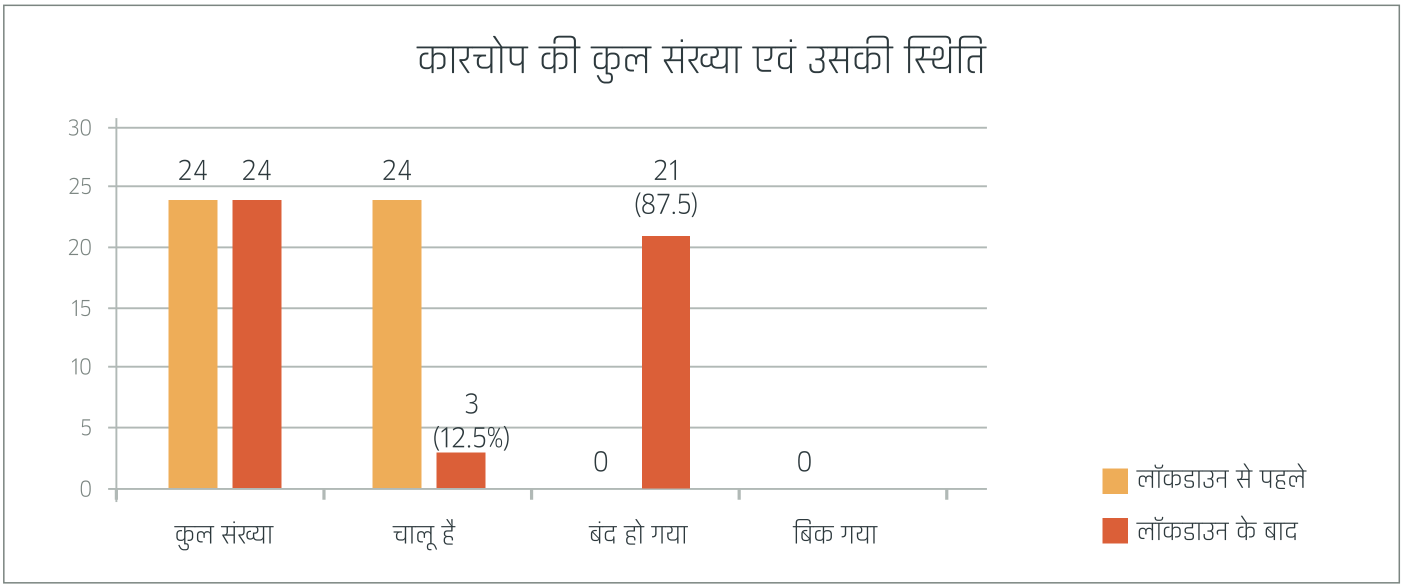

चित्र 9 : कारचुप की कुल संख्या और उनकी स्थिति

चित्र 9 में लोगों के पास रहने वाले कारचुप की संख्या दिखाई गई है। हाथ से एंब्रोईडरी जिसे जरदोज़ी कहा जाता है, लकड़ी के फ्रेम पर किया जाता है। लॉकडाउन से पहले और बाद में कारचुप की संख्या 24 थी। इसका मतलब किसी ने कारचुप नहीं बेचा क्योंकि वह बहुत सस्ता है, सिर्फ 500 रूपया,जिसे बेचने पर कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। लेकिन लॉकडाउन के बाद सिर्फ 3 कारचुप चल रहे हैं। काम का ऑर्डर नहीं होने के कारण 21 (87.5%) कारचुप बंद है।

जलालीपुरा के अब्दुल्ला कहते हैं की उनके पास लॉकडाउन से पहले 20 कारचुप थे, लेकिन आज 8 महीने बाद 19 बंद है और कुछ दिनों से सिर्फ 1 चल रहा है।

चौहट्टा के आफ़ताब के पास एक कारचुप है। आफ़ताब और उनके साथ कुछ कारीगर एम्ब्रोईडेरी का काम कर रहे थे। लेकिन लॉकडाउन के कारण सभी काम अचानक ठप्प हो गया। कारचुप के मालिक और दूसरों के कारचुप पर काम करने वाले कारीगर के पास कोई काम नहीं है।

कोयला बाजार के शाहिद जमाल बैनर का डिजाइन बनाते हैं। ये डिज़ाइन वह जरदोजी का काम करने वालों को देते हैं। कारीगर इस पर जरदोजी का काम करते हैं। जमाल को ऑर्डर विदेशी ग्राहकों से मिलता है। उनके अधिकांश ग्राहक इंग्लैंड, जर्मनी और बेल्जियम के हैं। लॉकडाउन से पहले वे महीने में 10000–15000 रूपए कमाते थे। अब वे मुश्किल से 2000–4000 रुपए कमा पाते हैं क्योंकि उन्हें पर्याप्त ऑर्डर नहीं मिल रहा है।

शाहिद समझाते हैं "काम पूरा करके भेज देते हैं लेकिन पेमेंट दो या तीन महीने बाद ही होता है। उनका काम 10–15 दिन में पूरा हो जाता है, उसके बाद सामान को ग्राहक तक पहुँचने में और 10–15 दिन समय लगता है और उसके बाद पेमेंट होता है। इसके कारण उन्हें आर्थिक परेशानी होती है। शाहिद को लगता है की सरकार को कोई फिक्र नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय कूरियर चार्ज वैसे ही ज़्यादा है, अब इसके साथ 12 प्रतिशत जीएसटी भी देना है। ऊपर से भेजे जाने वाले सामान की कीमत को भी पहले जमा करना होता है, ये रकम बाद में वापस किया जाता है। शाहिद कहते हैं "कानून ठीक नहीं है, अगर ऐसा ही चलता रहा तो यह काम बंद हो जाएगा"।

बड़ा परिदृश्य

यूरोप और इंग्लैंड में कोविड-19 में महामारी के कारण पूर्वांचल के हस्तकला और हस्तकरघा व्यापार को 3000 करोड़ रूपए का नुकसान हुआ है। लॉकडाउन के बाद पिछले दो महीनों में इन देशों से मिलने वाले ऑर्डर या तो रद्द कर दिए गए हैं या स्थगित कर दिए गए हैं। यूरोप के देश भारत से सबसे ज़्यादा मात्रा में रेशम के कपड़े, साड़ी, स्कार्फ, दुपट्टा, बेड शीट्स और तकियों के कवर आयात करते हैं। बनारसी वस्त्र उद्योग संघ के महासचिव राजन बहल ने यूरोप के देशों में कोरोना महामारी की दूसरी लहर को लेकर व्यापारियों के चिंतित होने की बात कही है। कई ऑर्डर रद्द कर दिये गये हैं। कई व्यापारियों ने उत्पादन कम करवा दिए हैं और कई ने काम बंद कर दिया है।

इंडो-अमेरिकन चेम्बर ऑफ कॉमर्स के वाराणसी चैप्टर के अध्यक्ष सुदेष्णा बसु के अनुसार वाराणसी और उसके नजदीकी जिलों से किए जाने वाले निर्यात के ऑर्डर यूरोप के देशों में कोरोना महामारी की दूसरी लहर के कारण रद्द किए जा रहे हैं। (स्रोतः अमर उजाला हिंदी अख़बार, वाराणसी संस्करण, 24.12.2020)।

कोयला बाज़ार के शेख अब्दुल्लाह मुकुट और मोरी बनाते हैं। इसमें बारीक जरदोजी काम की ज़रूरत होती है। वे इन्हें यूरोप के बाज़ार में निर्यात करते हैं। लेकिन नए ऑर्डर नहीं मिलने के कारण उनके पास बहुत कम काम है। उन्होंने बताया की काम नहीं रहने के कारण उनके कारचुप पर काम करने वाले 20-25 कारीगर के पास भी काम नहीं है। ये लोग जरदोज़ी काम के बहुत अच्छे कारीगर हैं लेकिन इन्हें मजबूरी में दिहाड़ी पर मजदूरी करनी पड़ रही है।

बनारस का शिवाला और कोयला बाज़ार चौहट्टा जरी/आरी काम के लिए जाना जाता है। लॉकडाउन के बाद काम नहीं रहने के कारण बहुत कम कारखानादारों और कारीगरों ने अपनी छोटी दुकान खोली, ज़्यादातर लोग दूसरे काम की तलाश कर रहे हैं।

लॉकडाउन का प्रभाव

लॉकडाउन के पहले और लॉकडाउन के बाद : काम के स्वरूप, अवसर और घंटे

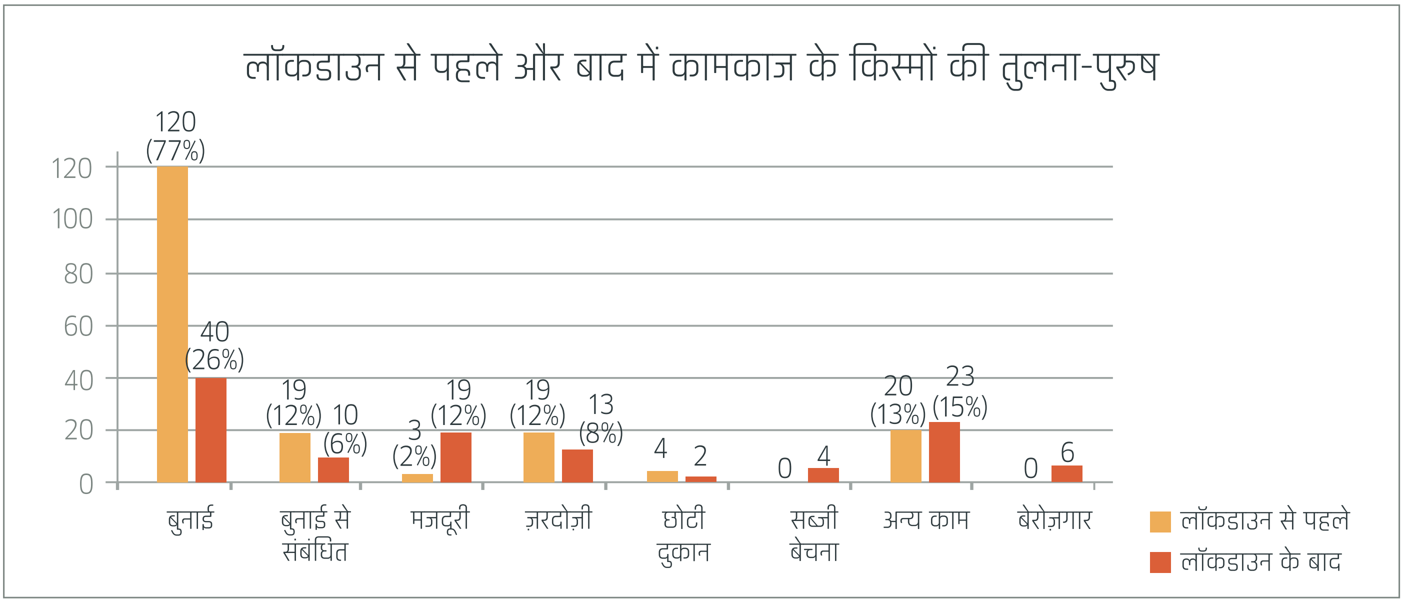

चित्र 10: लॉकडाउन के पहले और बाद में काम के स्वरूप की तुलना (पुरुष)

ऊपर दिये गये चित्र में लॉकडाउन के पहले और बाद में पुरुष बुनकरों और मजदूरों के काम की प्रकृति को दिखाया गया है। करघा उद्योग में बुनाई मुख्य काम है।

चित्र के अनुसार लॉकडाउन से पहले 120 बुनकर बुनाई का काम करते थे। यह संख्या सैंपल का 77 प्रतिशत है। लॉकडाउन के बाद इस संख्या में भारी कमी आती है। लॉकडाउन के बाद सिर्फ 40 बुनकरों के पास काम रहता है। यह संख्या सिर्फ 26 प्रतिशत है। लॉकडाउन के कारण बुनाई के काम पर इतना ज़्यादा असर पड़ा की वह लगभग ख़त्म हो गया।

पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों को परिवार का भरण–पोषण करने वाला समझा जाता है। इसके दबाव में पुरुष किसी भी तरह के काम करने लगे। लॉकडाउन के पहले सिर्फ 3 पुरुष (2 प्रतिशत) मजदूरी करते थे लेकिन लॉकडाउन के बाद ये संख्या बढ़कर 19 (12 प्रतिशत) हो जाती है।

करघा उद्योग में पुरुषों के लिए बुनाई के अलावा बाइंडिंग, फिनिशिंग, रंगाई, पट्टे का डिजाइन बनाना और एंब्रोईडरी का काम है। बुनाई से संबंधित इन सभी कामों में लॉकडाउन से पहले 19 लोग (12 प्रतिशत) काम करते थे। लॉकडाउन के बाद ये संख्या घटकर 10 (6 प्रतिशत) रह गई।

जरदोजी का काम बुनाई से अलग तरह का काम है। ये मुख्यतः हाथ से कढ़ाई करना है। आंकड़ों के अनुसार लॉकडाउन से पहले 19 लोग (12 प्रतिशत) कढ़ाई का काम करते थे, लेकिन लॉकडाउन के बाद यह संख्या घटकर 13 (8 प्रतिशत) हो गयी।

लॉकडाउन से पहले 4 लोगों (2.5 प्रतिशत) के पास अपनी दुकान थी, लॉकडाउन के बाद सिर्फ 2 लोगों (1 प्रतिशत) के पास अपनी दुकान है।

लॉकडाउन से पहले 20 लोग (13 प्रतिशत) बुनाई के अलावा दूसरे काम में थे, लॉकडाउन के बाद इन लोगों की संख्या 23 (15 प्रतिशत) हो गई। ये लोग दूसरे की दुकान में काम करते हैं, दिहाड़ी मजदूरी करते हैं, बढ़ई का काम करते हैं, ऑटो–रिक्शा चलाते हैं या चाय की दुकान चलाते हैं।

6 बुनकर (4 प्रतिशत) ऐसे थे जिनके पास लॉकडाउन के बाद कोई काम नहीं

लॉकडाउन के पहले

लॉकडाउन के बाद

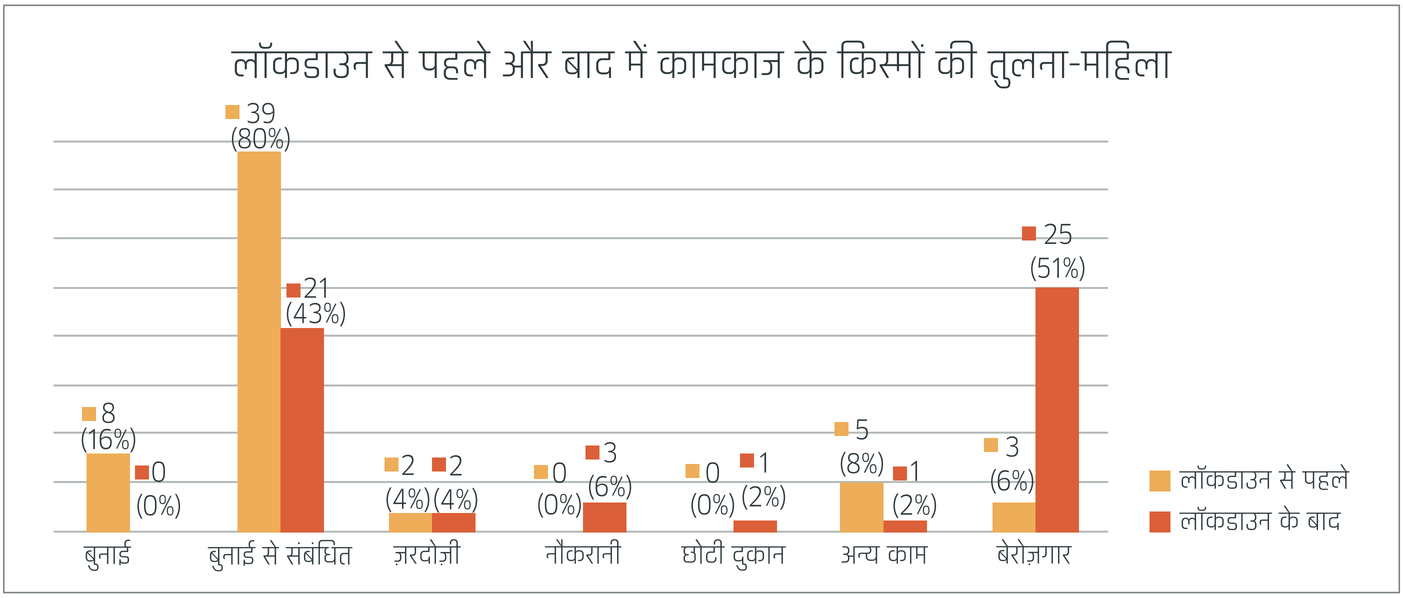

चित्र 11: लॉकडाउन के पहले के काम और बाद के काम के स्वरूप की तुलना (महिला)

परिवार आधारित करघा उत्पादन लगभग नगण्य हो गया है। महिला और पुरुष अब उत्पादन के एकल पारिवारिक इकाई का हिस्सा नहीं रहे। अब दोनों अपने-अपने मालिकों के लिए काम करते हैं। देश की आज़ादी के बाद हथकरघा उद्योग की स्थिति लगातार ख़राब होती गयी। महिलाएं मुख्यतः इस काम को शुरू करने के लिए किए गए कामों और फिनिशिंग का काम करती हैं। इनमें नरी भरना, टिकली लगाना, फिनिशिंग, सिलाई करना और माला बनाना आदि शामिल है।

लॉकडाउन के पहले 8 महिलाएं (16 प्रतिशत) बुनाई करती थीं लेकिन लॉकडाउन के बाद कोई भी महिला इस काम में नहीं हैं। लॉकडाउन से पहले भी सिर्फ मऊ और आजमगढ़ जिले की महिलाएं करघे पर बुनाई करती थीं बाकी किसी जिले में महिलाएं करघे पर बुनाई का काम नहीं करती थीं। आजमगढ़ और मऊ जिले में महिला बुनकरों की संख्या पुरुष बुनकरों से ज़्यादा है।

जरदोजी का काम मुख्यतः हाथ से कढ़ाई करने का काम है। इस काम में सिर्फ 2 महिला (4 प्रतिशत) लगी थीं। लॉकडाउन के बाद महिलाओं को नियमित रूप से यह काम नहीं मिलने के बारे में पता चला है।

लॉकडाउन के पहले सर्वे में हिस्सा लेने वाली कोई महिला घरेलू नौकर के रूप में काम नहीं करती थी। लेकिन लॉकडाउन के बाद 3 महिला(6 प्रतिशत) घरेलू नौकर के बतौर काम करने लगी हैं। लॉकडाउन के बाद सिर्फ एक महिला ने अपनी दुकान खोली है।

इस महामारी का सबसे ज़्यादा असर इस उद्योग में काम करने वाली महिलाओं पर पड़ा है। आंकड़ों से हम देख सकते हैं की लॉकडाउन के बाद 25 महिलाओं (51 प्रतिशत) के पास कोई काम नहीं रहा जबकि लॉकडाउन से पहले सिर्फ 3 महिलाओं (6 प्रतिशत) के पास काम नहीं था।

लॉकडाउन के पहले 5 महिलाएं परिवार को आर्थिक मदद करने के लिए अचार बनाने, आशा कर्मी, छोटी दुकान चलाने, सब्जी बेचने का काम करती थीं।

लॉकडाउन के पहले

लॉकडाउन के बाद

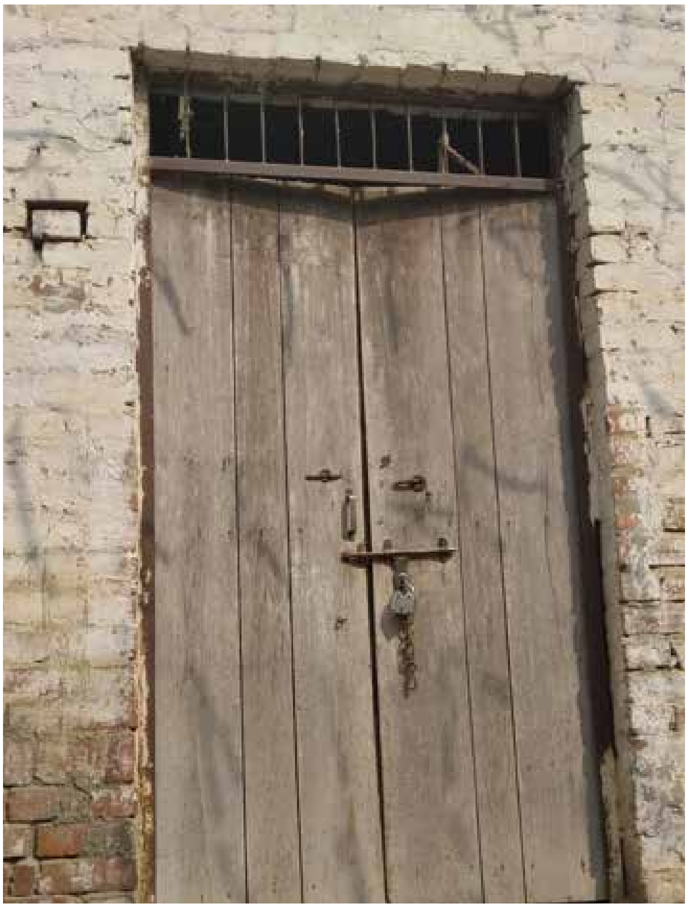

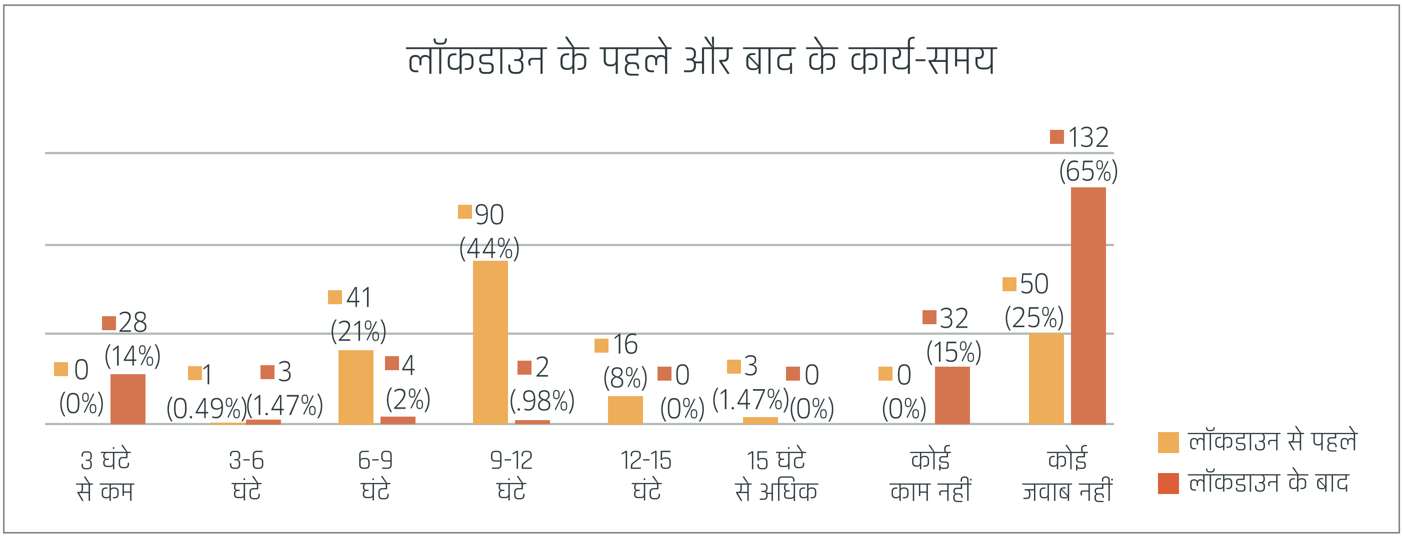

चित्र 12 : लॉकडाउन के पहले और बाद में काम के घंटे

कोविड महामारी को रोकने के लिए थोपे गये लॉकडाउन में सब कुछ बंद हो गया था। अभी भी आर्थिक स्थिति पटरी पर नहीं लौटी है। बेरोजगारी चरम पर है। करघा उद्योग में लॉकडाउन से पहले बुनकर हर रोज 6–15 घंटे तक करघों पर काम करते थे। बुनकर अपने करघे पर या दूसरे के करघे पर काम करते थे। ऊपर के चित्र में सिर्फ पुरुषों के लॉकडाउन से पहले और उसके बाद में बुनाई करने के घंटे दिखाए गए हैं।

हम देख सकते हैं की 90 लोग(44 प्रतिशत) लॉकडाउन से पहले रोजाना 9–12 घंटे काम करते थे। लॉकडाउन के बाद इतने घंटे काम करने वाले लोगों की संख्या सिर्फ 2 (1 प्रतिशत) है। ये लोग मुख्यतः करघा उद्योग के बुनकर हैं। सर्वे में हिस्सा लेने वाले 41 लोग (21 प्रतिशत) लॉकडाउन से पहले 6–9 घंटे काम करते थे। लॉकडाउन के बाद इतने घंटे काम करने वाले सिर्फ 4 लोग (2 प्रतिशत) रह गए।

लॉकडाउन से पहले 16 लोग (8 प्रतिशत) रोजाना 12–15 घंटे काम करते थे और 3 लोग (1 प्रतिशत) रोजाना 15 घंटे से ज़्यादा काम करते थे। लेकिन लॉकडाउन के बाद लोगों के पास काम नहीं रहने के कारण अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए जद्दोजहद करनी पड़ रही है। हम कह सकते हैं की लॉकडाउन से पहले 53 प्रतिशत लोग 9 घंटे या उससे ज्यादा समय काम करते थे और उनके पास पर्याप्त काम रहता था। लेकिन लॉकडाउन के बाद सिर्फ 1 प्रतिशत लोग 9–15 घंटे काम करते हैं।

लॉकडाउन के बाद 3 लोग 3–6 घंटे काम करते थे जबकि उसके पहले 1 आदमी इतने घंटे काम करता था।

लॉकडाउन से पहले कोई भी तीन घंटे से कम काम नहीं करता था, लेकिन लॉकडाउन के बाद 28 (14 प्रतिशत) लोग 3 घंटे से कम काम करते हैं। इससे लोगों की आमदनी में उल्लेखनीय कमी आने के बारे में अंदाजा लगाया जा सकता है।

आज स्थिति यह हो गयी है की गृहस्था/ कारखानेदार आज एक से डेढ़ महीने में एक साड़ी का काम पूरा करने के लिए कहता है जबकि लॉकडाउन से पहले इसे 6–7 दिन में पूरा किया जाता था। लॉकडाउन के कारण बुनकरों के काम के घंटे और आमदनी पर बहुत ज़्यादा असर पड़ा है।

सर्वे में भाग लेने वालों में 32 लोगों (15 प्रतिशत) के पास लॉकडाउन के बाद कोई काम नहीं है। लॉकडाउन से पहले कोई बेरोजगार नहीं था। 132 लोगों (65 प्रतिशत) के पास बुनाई और उससे जुड़े काम के घंटों पर सवाल का कोई जवाब नहीं है। उनसे इसके बारे में पूछने पर बताते हैं “खाली बैठे हैं। कोई काम नहीं है। कभी कभार कुछ मिल जा रहा है। कैसे बताएं कितने घंटे काम करते हैं”?

नियमित काम नहीं मिलने के कारण लोग काम के घंटों का हिसाब नहीं रख पाते। इसलिए वे काम के घंटों के बारे में नहीं बता पाते।

बुनकर परिवारों की महिलाएं आम तौर पर सवेरे 5 बजे से दोपहर 12 बजे तक लगातार काम करने की बात करती हैं। इस बीच वे आराम नहीं करती हैं। लॉकडाउन से पहले वे करघे पर बुनाई, नरी भरना, चुनरी पर गोटा लगाना, टिकली लगाना, फिनिशिंग काम और आरी का काम करती थीं। इस काम की कोई समय सीमा नहीं थी क्योंकि इन कामों के बीच वे घर के सभी काम जैसे खाना बनाना, सफाई करना, बच्चों की देखभाल करना, पानी लाना जैसे सभी काम करती थीं।

महिलाएं बुनाई और उससे जुड़े काम कितने घंटे करती थीं बता पाना मुश्किल है। महिलाओं के लिए दो तरह के काम हैं। उनके घर में हथकरघा या पावर लूम है तो वे घर के सभी कामों के साथ बुनाई और नरी भरने का काम करती हैं। इन कामों के लिए उन्हें कभी पैसा नहीं दिया जाता है क्योंकि इन कामों को घरेलू काम का हिस्सा माना जाता है।

दूसरा,महिलाएं घर के बाहर पैसे के एवज में आरी, गोटा लगाने, टिकली लगाने, पत्थर लगाने, फिनिशिंग, बैग बनाने जैसे काम करती हैं। सर्वे में हिस्सा लेने वालों ने बताया "लॉकडाउन से सब काम ख़त्म हो गया। पहले साड़ी पर स्टोन लगाने का, चुनरी का काम मिलता था। अब लूम बंद हो गया है। बुनकरी का काम नहीं चल रहा है तो हम लोगों को भी काम नहीं मिल रहा है। काम नहीं है, खाली बैठे हैं"।

मऊ और आजमगढ़ में महिलाएं करघों पर साड़ी, ड्रेस, कफ़न के कपड़े, लहंगा और दुपट्टा बुनती हैं और परिवार की आमदनी बढ़ाती हैं। इनमे कई महिलाएं परिवार की रोटी चलाने वाली हैं।

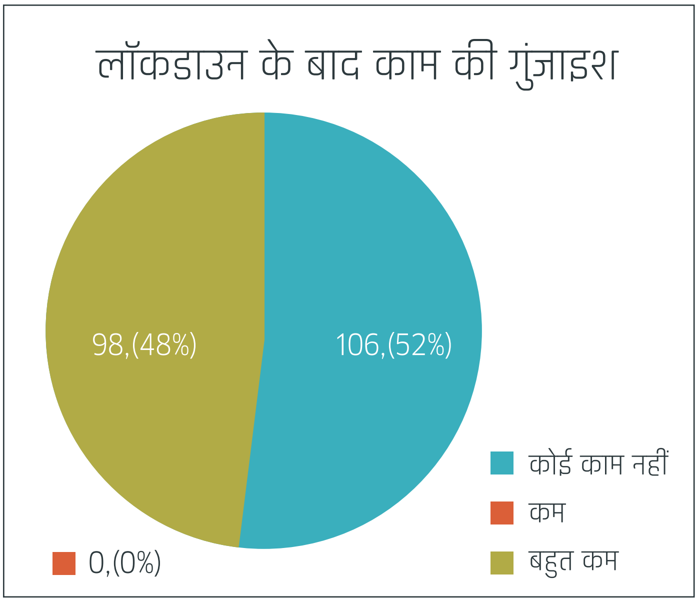

चित्र 13 : लॉकडाउन के बाद काम की गुंजाईश

लोगों से लॉकडाउन के बाद काम की गुंजाईश पर सवाल पूछा गया। उन्हें तीन विकल्प दिए गए, पहला विकल्प कम काम, दूसरा विकल्प बहुत कम काम और तीसरा विकल्प कोई काम नहीं। चित्र 13 में लोगों के जवाब को दिखाया गया है। 98 लोगों ने यानी 48 प्रतिशत ने बहुत कम काम मिलने की बात बताई और 106 (52 प्रतिशत) लोगों ने कोई काम नहीं रहने की बात कही। किसी ने भी कम काम के विकल्प को नहीं चुना। लॉकडाउन के समय लोगों का रोजगार ख़त्म हो गया और उसके 7-8 महीने गुजरने के बाद भी स्थिति नहीं सुधरी है।

इस दौरान मजदूरी में 50 प्रतिशत कटौती होने की बात भी सामने आई है। बुनकर और जरदोजी कारीगर दोनों बहुत ख़राब स्थिति में पहुँच गए हैं।

दूसरी ओर गृहस्था (उस्ताद बुनकर) को भी बना हुआ सामान बेचना है जो वे लॉकडाउन के कारण नहीं बेच पाये। जलालीपुरा के एक गृहस्था बदरे आलम अंसारी ने बताया की लॉकडाउन के समय उनके पास 3000 साड़ी थी और इन साड़ियों की औसत कीमत 600 रुपए

थी। बदरे आलम के पास ये स्टॉक पड़ा है जिसे वे बेचना चाहते हैं। उनके पास लाखों रुपए की सामग्री और 10 लाख का पावर लूम बेकार पड़ा है। हमारे साथ उनके बातचीत के समय तक उनके 14 पावर लूम में से एक भी नहीं चल रहा था। उन्होंने कहा "कोई मेरी साड़ी खरीद नहीं रहा है, मेरे पास अभी पहले का स्टॉक है। करघा चालू करने की ज़रूरत क्या है"?

मऊ, गोरखपुर और आजमगढ़ में भी यही स्थिति है।

इन तीनों जिलों के 34 लोगों में सिर्फ 9 लोगों के पास करघे हैं और ये सभी बंद पड़े हैं।

सराईया की 16 साल की मुस्कान अपनी माँ के साथ रहती हैं। कुछ साल पहले उनके पिता गुजर गए। दोनों माँ-बेटी साड़ी पर स्टोन लगाने का काम करके गुजारा करती थीं। लॉकडाउन के 10 महीने बाद भी इनके पास कोई काम नहीं है। 25 दिसंबर, 2020 को समूह साक्षात्कार में मुस्कान ने कहा "अब तो साड़ी का काम भी नहीं मिल रहा है। लॉकडाउन के समय से खाली बैठे हैं। खाने को नहीं है, भूखे सो जाते हैं। कभी-कभी चावल चटनी कहीं से मिल जाता है तो खा लेते हैं"।

आपबीती सुनाते हुए वो रोने लगी।

फील्ड दौरे के समय हमने बुनकरों से सुना है की गृहस्था अक्सर उन्हें सामान बनाकर एक महीने बाद आने को कहता है। इसका कारण न सिर्फ काम की कमी है बल्कि बिक्री भी बहुत कम हो गई है।

चौहट्टा बाजार, बनारस के जरदोजी कारीगर वसीम कहते हैं "एक तो काम नहीं मिल रहा है ऊपर से कारखानेदार ने मजदूरी घटा दिया है। जिस काम का पहले 150-170 रुपए मिलते थे, अब 80-100 मिल रहा है। काम नहीं है, इसलिए मजदूरी भी कम कर दिया है"।

जलालीपुरा के अख्तर अली बताते हैं की लॉकडाउन के पहले वे पावर लूम पर काम करके रोजाना 400 रूपया कमाते थे क्योंकि उस समय पर्याप्त काम था। लॉकडाउन के बाद अब 200 रूपए मजदूरी कमाते हैं और उन्हें सप्ताह में सिर्फ 2 दिन काम मिलता है।

बजरडीहा के ऐजाज अहमद कहते हैं की पहले रेशम, सीफोन और अन्य सभी तरह के साड़ी का काम होता था। लेकिन अब सिर्फ लिनेन साड़ी का बुनाई होता है। इसलिए काम भी कम है और मजदूरी भी कम है।

बुनकरों के पास काम नहीं रहने का कारण :

1. मांग की कमी।

2. बिजली के मुद्दे पर हड़ताल।

3. निर्यात नहीं होना।

4. शादी और त्यौहारों में लोगों के इकट्ठा होने पर पाबंदी।

इकबाल अहमद बनारस के सरायमोहाना के रहने वाले हैं। वे कहते हैं "हमारे घर में तीन लोग हैं। लॉकडाउन के बाद हम महीने में 2000 रूपए कमाते हैं, वो भी नियमित रूप से नहीं। वे आगे कहते हैं "कोई काम नहीं है। कई बार खाने को कुछ नहीं रहता है। मेरी तबीयत ठीक नहीं है और इलाज के लिए डॉक्टर के पास जाने के लिए मेरे पास पैसा नहीं है। ये सब देखकर मैं आत्महत्या करने की सोचता हूँ"।

इसी तरह की चरम मायूसी चंद्रिका राजभर में भी दिखती है। कोनिया, सरायमोहाना बनारस के रहने वाले चंद्रिका राजभर कहते हैं "हमारे पास काम नहीं है और हम इस सरकार से निराश हैं। मैं भगवान से प्रार्थना कर रहा हूँ की जल्दी-से जल्दी बेटी की शादी हो जाने के बाद हमें अपने पास बुला लें"।

55 साल के राजू मल्लाह, सरायमोहाना के रहने वाले हैं। वे अपनी पत्नी के साथ रहते हैं। उनके पास एक हथकरघा है। लॉकडाउन के पहले वे महीने में 5000 रूपए कमाते थे। अब करघा बंद पड़ा है और उनके पास कोई काम नहीं है। राजू मल्लाह दिहाड़ी पर काम कर लेते हैं, लेकिन ये काम भी–उन्हें नियमित नहीं मिलता। पति-पत्नी दोनों अभी तक नमक के साथ चावल खा कर गुजारा कर रहे हैं। वे हमेंशा अवसाद में रहते हैं और सोचते रहते हैं की कल क्या खायेंगे।

उन्होंने हमें बताया "भविष्य में यही सोचते हैं की भगवान हम दोनों प्राणी को मौत दे दे, ताकि एक अगर रहेगा तो कौन आगे-पीछे देखेगा। इसलिए सोचता हूँ की हमसे पहले मेरी पत्नी को मौत आए ताकि उसको किसी के आसरे नहीं रहना पड़े"।

शाहिद जमाल अपने सात सदस्य परिवार की मुखिया हैं। चौहट्टा,बनारस के रहने वाले जमाल हमें 28 नवम्बर, 2020 को बताते हैं "लॉकडाउन के समय मजदूर और मालिक सब परेशान थे"। वे कहते हैं "उस समय बाहर निकलने का और निकल कर कुछ करने का रास्ता नहीं था"। बात को जारी रखते हुए जमाल कहते हैं "सामग्री का भुगतान करना और कुछ वापस आने को सुनिश्चित करना अभी सबसे कठिन काम है। आमदनी का कोई स्रोत नहीं है। हम काम भी करते हैं तो हमें 2-3 महीने बाद पैसा मिलेगा। हमसे 12 प्रतिशत जीएसटी देने की अपेक्षा भी किया जाता है। यह कानून हमारे हित में नहीं है। स्थिति अगर नहीं सुधरती है तो ये व्यापार बंद हो जाएगा"।

अपने आमदनी के बारे में जमाल बताते हैं "लॉकडाउन के पहले मैं महीने में 10000-15000 रूपए कमाता था। आज मुश्किल से 2000-4000 रूपए कमाता हूँ। कोई भविष्य नहीं है"। पहले जमाल के पास 6-7 मजदूर काम करते थे, अब 1-2 बचे हैं।

कोइला बाज़ार के वकील अहमद कहते हैं "मैं नहीं जानता हूँ की मैं क्या करूँ। मैं इस स्थिति से तंग हो चुका हूँ। मैं आत्महत्या करने के बारे में सोचता हूँ। लेकिन मेरे छोटे-छोटे बच्चे हैं। मेरे बाद वे मुसीबत में पड़ेंगे। यही सोच कर मैं अपने को संभालता हूँ"। ये गौर तलब है की बनारस प्रधानमंत्री मोदी का संसदीय क्षेत्र है।

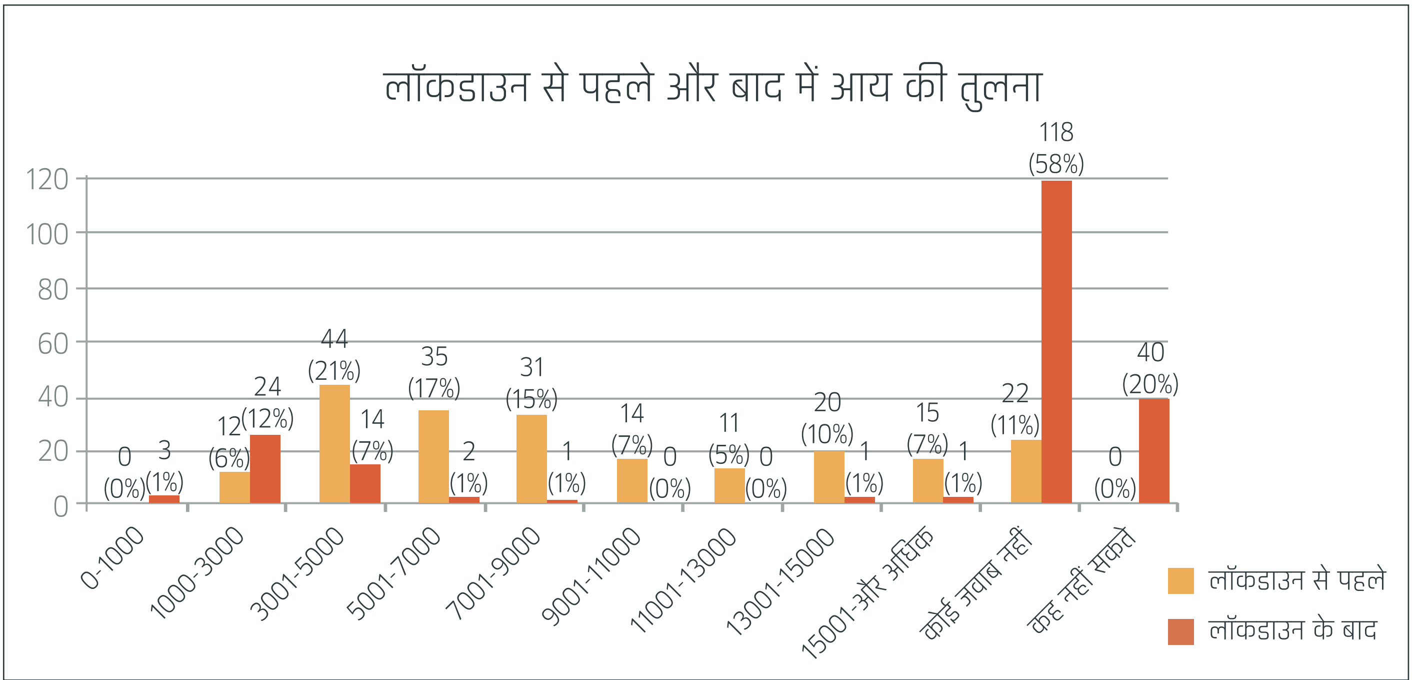

चित्र 14 : लॉकडाउन से पहले और बाद के समय में आमदनी की तुलना

आर्थिक आत्म—निर्भरता एक परिपूर्ण और सुखी जीवन के लिए ज़रूरी है। नियमित आय परिवार के स्वास्थ्य और खुशहाली को सुनिश्चित करने में बहुत मददगार होती है। हालांकि बुनाई और उससे जुड़े कामों में लगे परिवारों की

आर्थिक स्थिति लॉकडाउन से पहले भी ऐसी थी जिसमें वे मुश्किल से गुजारा कर रहे थे। लॉकडाउन के बाद स्थिति इतनी गंभीर हो गई की कुछ परिवारों को भुखमरी की कगार पर खड़ा कर दिया। बहुत सारे लोगों ने हमें बताया की कैसे वे अक्सर भूखे सो जाते थे, या कर्ज पर निर्भर हो गए थे या ज़िंदा रहने के लिए किसी के रहम पर निर्भर हो गये थे। बहुत लोगों ने दिन में एक बार खाना मिल जाने को अपना सौभाग्य कहा।

लॉकडाउन के पहले 44 (21 प्रतिशत) लोगों की आमदनी महीने में 3001–5000 रूपए थी। लॉकडाउन के बाद इस आमदनी समूह में सिर्फ 14 लोग (7 प्रतिशत) रह गये।

लॉकडाउन के पहले 35 (7 प्रतिशत) लोग महीने में 5001–7000 रूपए कमाते थे। लेकिन लॉकडाउन के बाद इनकी संख्या घटकर 2 (1 प्रतिशत) हो गई।

31 लोग (15 प्रतिशत) महीने में लॉकडाउन से पहले 7001–9000 रूपए कमाते थे। लेकिन आज सिर्फ 1 आदमी इतना पैसा कमा रहा है।

14 लोग (7 प्रतिशत) लॉकडाउन से पहले महीने में 9000 से ज़्यादा लेकिन 11000 से कम कमाते थे। 11 लोग 11000 से ज़्यादा और 13000 रूपए से कम कमाते थे। आज कोई भी महीने में 9001–13000 रूपए के बीच नहीं कमा रहा है।

लॉकडाउन से पहले 20 लोग (10 प्रतिशत) महीने में 13001–15000 रूपए आमदनी कर रहे थे। आज इतनी आमदनी सिर्फ एक आदमी की है।

इसी तरह से लॉकडाउन से पहले 15 लोग महीने में 15000 रूपए से ज़्यादा कमाते थे। लेकिन आज सिर्फ एक आदमी शिवाला के व्यापारी मोहम्मद शाहिद 15000 रूपए से ज़्यादा कमाते हैं। लॉकडाउन से पहले शाहिद का महीने का कारोबार 2 लाख रूपए का था और जिनके कढ़ाई के मशीन पर 10–12 कारीगर काम करते थे। आज वहाँ के कारीगरों के पास काम नहीं है।

लॉकडाउन से पहले 12 (6 प्रतिशत) लोगों की मासिक आमदनी 1001 से 3000 रूपए के बीच थी। आज यह संख्या बढ़कर 24 (12 प्रतिशत) हो गई है। यह भयानक गरीबी को फैलने को दिखाता है।

लॉकडाउन के बाद 3 लोगों की आमदनी 1000 रूपए से कम थी। लॉकडाउन से पहले किसी की आमदनी 1000 रूपए से कम नहीं थी।

महीने की आमदनी स्थिर नहीं होने के कारण 118 लोगों (58 प्रतिशत) महीने की आमदनी का ठोस जवाब नहीं दे पाये। लॉकडाउन के बाद 40 लोग महीने की आमदनी नहीं बता पाये। हम देख सकते हैं की कुल 158 लोग (77 प्रतिशत) उनकी महीने की आमदनी की अनिश्चयता के कारण उसके बारे में ठीक से कुछ भी बता नहीं सकते। लोगों की जब आमदनी होती है तो वे दिन में एक बार खाना खा सकते है। लोग निराश है और वे नहीं जानते की हालत कब पटरी पर लौटेगी।

बजरडीहा के ऐजाज अहमद और इकबाल ने हमें बताया था की मार्च महीने में जब अचानक लॉकडाउन की घोषणा की गई तब उनके पास साड़ी का स्टॉक था। ऐजाज को 300-400 रूपए में बिकने वाली साड़ी को 175 रूपए में बेचना पड़ा। इकबाल की साड़ी की कीमत 650 रूपए थी लेकिन गद्दीदार (दुकान मालिक) उसके लिए 250 रूपए ही देने को तैयार था।

मोहम्मद शरीफ रेवरी तालाब, बनारस के गृहस्था (उस्ताद बुनकर) हैं। उन्होंने बताया लॉकडाउन के समय उनके पास डेढ़ लाख से 2 लाख रूपए का रेडीमेड सामान था जिसे वे बेच नहीं पाये थे। वे आज तक इसे बेच नहीं पाये।

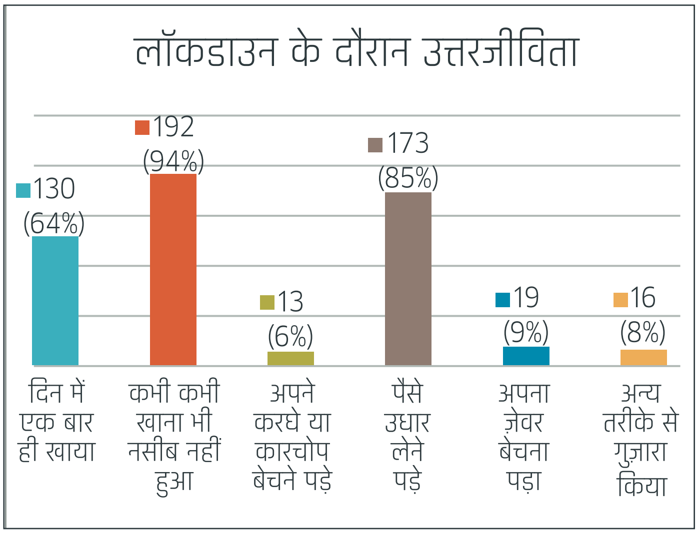

चित्र 15: लॉकडाउन के समय ज़िंदा रहने के जद्दोजहद

दसियों लाखों लोगों के रोजगार छिन जाने और अर्थ व्यवस्था के निम्न स्तर पर पहुँचने की स्थिति में निम्न आय समूह के लोग और मध्यम वर्ग के लोगों के लिए गुजर बसर कर पाना सबसे बड़ी चुनौती थी। लोगों ने गुजर बसर करने और परिवार के सदस्यों की देख-भाल करने के लिए पूरी कोशिश की। चित्र 15 से हम देखते हैं की 173 (85 प्रतिशत) लोगों ने खुद को और परिवार को ज़िंदा रखने के लिए किसी न किसी से कर्जा लिया। कुल 130 (65 प्रतिशत) लोगों ने दिन में सिर्फ एक बार खाना खाया। 192 (94 प्रतिशत) लोगों को लॉकडाउन के समय किसी-किसी दिन भूखा रहना पड़ा। ये सचमुच स्तब्ध करने वाली बात है। अधिकांश परिवारों ने नमक-रोटी और नमक-चावल के सहारे पेट की भूख मिटाई। लॉकडाउन के बाद भी बहुत सारे परिवारों का वही हाल बना हुआ है क्योंकि लोगों के पास रोजगार नहीं है। कुछ परिवारों ने तो ये कहा "लॉकडाउन में तो कुछ खाना मिल भी जाता था, लोग मदद करते थे लेकिन अब तो कोई मदद भी नहीं करता। कोई काम भी नहीं मिल रहा है, खाने को कुछ नहीं है, कभी कोई कुछ दे देता है तो वही खा लेते हैं तो कभी भूखे भी रहना पड़ता है"।

19 (9 प्रतिशत) लोगों ने अपने जेवर बेच दिये और 13 लोगों (6 प्रतिशत) ने अपने करघे/करचुप बेच दिये। 16 लोगों ने (8 प्रतिशत) ज़िंदा रहने के लिए दूसरा तरीका अपनाया जैसे दुकानदारों से उधार लेना और घर के बर्तन बेचना। एक परिवार ने बड़े बेटा का लॉकडाउन और कर्ज के बढ़ते बोझ के कारण आत्महत्या कर लेने की बात बताई।

हमने पाया की कुछ लोगों ने घर के खर्चे के लिए अपने करघे और पावर लूम कबाड़ वालों को कबाड़ के भाव पर बेच दिया। इससे उनको कुछ दिनों की राहत ज़रूर मिली लेकिन उनके गुजर बसर का साधन उनके हाथ से चला गया।

हमें कोइला बाज़ार में बहुत ही विचलित कर देने वाली घटना के बारे में पता चला। कुछ लोगों ने आर्थिक तंगी से परेशान हो कर पैसे के लिए अस्पताल को अपना खून बेचा!

कुछ केस स्टडीज़

कैसर सराईया के रहने वाली हैं। वे अपनी और अपनी पड़ोसियों की कहानी सुनाती हैं "लॉकडाउन के समय बच्चे भूखे घर में पड़े हैं। वे पूछते हैं की आज क्या खाना बना है, मैं उन्हें चटनी के साथ चावल देती हूँ। कोई खा लेता है तो कोई नहीं खाता है और भूखे रह जाता है।

वो कहती हैं "हमारे घर में स्थिति सचमुच बहुत ख़राब है। मेरा बेटा और पति करघे पर काम करते है, लेकिन काम नहीं रहने के कारण करघा बंद है। करघे पर काम करने वाले बुनकर बेरोजगार हो गए हैं"। कैसर ने हमें बताया की वह जब अगले 3–4 महीने में बेटी की शादी

कर देने के बारे में सोच रही थी तो अचानक लॉकडाउन की घोषणा कर दी गई। वह कहती हैं "लॉक डाउन के कारण हमें शादी स्थगित करनी पड़ी। जब सब काम बंद हो गए और हमारे पास खाने के लिए पैसा नहीं रहा तब हमने बेटी की शादी के लिए बनाया गया ईयरिंग बेच दिया। मैं क्या कर सकती थी? हमें पेट भरना था। मैंने अपने परिवार को बचाने के लिए घर के बर्तन और दूसरे सामान बेच दिए"।

कैसर ने हमें उनकी पड़ोसियों के दुर्दशा के बारे में भी बताया। "लॉकडाउन के समय बड़े पैमाने पर लोग भूखे थे। लेकिन किसी के मर जाने पर उसके लिए कफ़न तक का इंतज़ाम नहीं कर पाना सबसे ख़राब था"। उन्होंने इलाके में आत्महत्याओं के बारे में बताया।

संकट इतना भयावह हो चुका है की किसी ने करघे पर खुद को लटका लिया। सात सदस्यों के परिवार ने पुलिया से कूदकर जान दे दी। उन्होंने पहले अपने पाँच छोटे बच्चों को पुल से नीचे धकेल दिया और फिर खुद पुलिया से नीचे छलांग लगा दी"। कैसर ने एक दूसरी दुखद घटना के बारे में बताया" बच्चे भूखे थे, उन्होंने खाने के लिए जिद की। उनके पिता बच्चों को खाना नहीं दे पाये और करघे पर आत्महत्या कर ली"। उन्होंने आगे कहा की सरकार द्वारा दिया गया राशन अपर्याप्त है और खाने लायक भी नहीं है। वो कहती हैं "हमें गेहूँ और चावल दिया जाता है। ये अपर्याप्त है और ऊपर से जो चावल हमें मिलता है वह इतना मोटा है की हमारे गले में अटक जाता है"।

बुनकर गुजर बसर करने के लिए अन्य कई तरह के काम करने लगे हैं। इमामुद्दीन अंसारी मऊ जिला के घोषी के रहने वाले हैं और वे अब बढ़ई का काम करने लगे हैं।

उनके पास करघा है। लेकिन लॉकडाउन और करघे के लिए ज़रूरी सामग्री नहीं रहने के कारण करघा बंद है। इमामुद्दीन साड़ी बनाने के लिए सामग्री उस आदमी से लेते थे जिसे वे साड़ी देते थे। इमामुद्दीन को एक साड़ी के लिए 50 रूपए मिलते थे। हम पूरा परिवार मिलकर मेहनत से एक दिन में 2–3 साड़ी बना लेते थे। इमामुद्दीन ने हमें लॉकडाउन के कारण उनके रोजगार का दूसरा जरिया छिन जाने के बारे में बताया। "मैं ई–रिक्शा चलाता था। बैटरी को ख़राब होने से बचाने के लिए मैं उसे ले जा रहा था। हमने पुलिस इंस्पेक्टर राय साहब को ठेला लेकर खड़ा सब्जी वाले को मारते हुए देखा। ये देखकर मैं रिक्शा छोड़कर वहाँ से भाग गया और बाद में रिक्शा को 75000 रूपए में बेच दिया"।

बनारस के नक्की घाट के रहने वाले बसिर अहमद ने पत्नी और बच्चों को अपने रिश्तेदार के पास भेज दिया क्योंकि लॉकडाउन के समय वे उन्हें खाना नहीं खिला सकते थे। उन्होंने हमें पूछा जब मुझे ये पता नहीं है की आज मुझे खाना मिलेगा या नहीं तो मैं भविष्य के बारे में क्या सोच सकता हूँ?

बनारस के लोहता के रहने वाले अंसार अहमद के पास दो करघे हैं, लेकिन काम नहीं रहने के कारण दोनों बंद पड़े हैं। बिजली की हड़ताल भी चल रही है, इसलिए अंसार हथकरघा पर काम करने के बारे में सोच रहे हैं। इसमें कम जगह की ज़रूरत होगी और बिजली की भी ज़रूरत नहीं होगी।

मोहमद हनीफ बनारस के लल्लापुरा के रहने वाले हैं। लॉकडाउन के पहले वे बुनाई का काम करते थे, लेकिन अब कोई काम नहीं है। लॉकडाउन के समय शुरू में उन्होंने अपनी बचत से परिवार चलाया। लेकिन बचत

ख़त्म होने के बाद बेटे ने उनसे पूछा की अब हमें राशन कैसे मिलेगा। उसने खुद घर पर चाय और चना मसाला बनाकर उसे बाहर जा कर बेचने का प्रस्ताव दिया। इससे वे कुछ दिन तक अपना गुजारा कर सके। लेकिन लॉकडाउन के बाद उन्हें ग्राहक मिलने बंद हो गए। उनकी बेटी लड़कियों को सिलाई सीखा कर कुछ पैसा कमाने लगी। लेकिन उनके पड़ोस का एक लड़का उसे परेशान करने लगा और यौन उत्पीड़न किया। मोहमद हनीफ़ अब सिर्फ आर्थिक दिक्कतों से परेशान नहीं है, वे बेटी की सुरक्षा को लेकर भी चिंतित हैं। उन्होंने बताया की यह पहला मौका है जब ईद में उनके घर में सिवइयाँ न बनी हों।

लल्लापुरा के गुलजार और मोहम्मद निषाद ने पैसे की तंगी और खाने को लेकर घर में तनाव रहने के बारे में बताया। संभावित हिंसा से बचने के लिए दोनों ने एक दूसरे से दूरी बनाये रखने का निर्णय लिया। फील्ड में दौरा करने के समय हमें पता चला की लॉकडाउन में लोग अपने बच्चों और पत्नियों को खिलाने में समर्थ नहीं होने के कारण उन्हें रिश्तेदारों के पास भेज रहे थे।

लल्लापुरा के अब्दुल सालाम दूसरे के करघे पर काम करते थे और महीने में 3200 रूपए कमाते थे। अब उनके पास कोई काम नहीं है। ऊपर से एक बल्ब और एक पंखे के लिए उन्हें डेढ़ साल में 65000 रूपए बिल जमा करने के लिए कहा गया है! लॉकडाउन के समय उनके ससुर की मौत हो गयी लेकिन आर्थिक दिक्कतों के कारण वे उनकी अंतिम यात्रा में शामिल नहीं हो पाये। उन दिनों परिवार के साथ उन्होंने किस तरह से गुजारा किया उसके बारे में वे कहते हैं "कभी भूखे ही रहे, कभी एक टाइम खाया, वो दिन याद करना नहीं चाहते। अभी भी परेशान हैं। दिल करता है की जान दे दूँ"।

बुनकरों के सभी समुदायों के लोगों की स्थिति दुखद है। सर्वे में हिस्सा लेने वाले 204 लोगों में से 48 (26 प्रतिशत) लोगों को बुनाई काम का कोई भविष्य नहीं दिख रहा है और वे दूसरे काम में जाने पर विचार कर रहे हैं। सर्वे में हिस्सा लेने वाले उन 6 लोगों के बारे में हम बहुत चिंतित है जो नाउम्मीदी में आत्महत्या करने के बारे में सोचने लगे हैं।

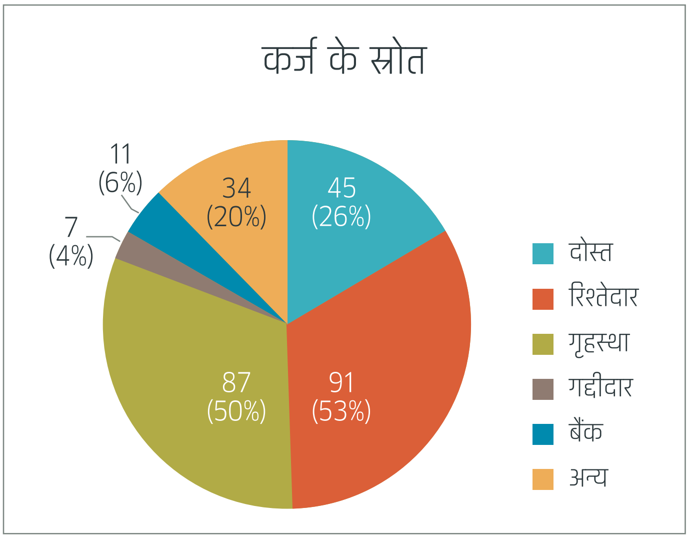

चित्र 16: कर्ज के स्रोत चित्र

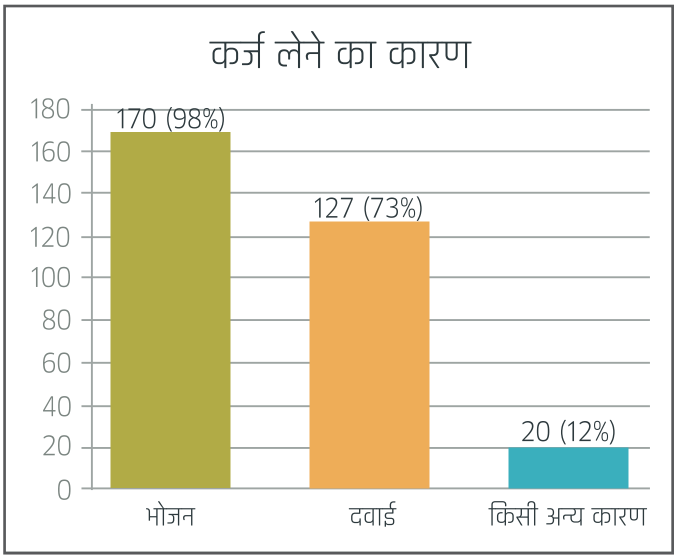

17 कर्ज लेने का कारण

85 प्रतिशत लोगों ने गुजर-बसर करने के लिए कर्जा लिया है। इनमें से 45 लोगों को (26 प्रतिशत) दोस्तों से मदद मिली। 91 लोगों ने (53 प्रतिशत) रिश्तेदारों से कर्जा लिया। 87 लोगों (50 प्रतिशत) को गृहस्था ने उधार दिया। सिर्फ 11 (6 प्रतिशत) लोगों ने बैंक से कर्जा लिया क्योंकि बैंक कर्जे पर ब्याज लेता है जिसे लॉकडाउन के समय चुकाना संभव नहीं था। 34 लोगों ने (20 प्रतिशत) ने सेल्फ हेल्प ग्रुप, मकान मालिक और पड़ोसियों से कर्जा लिया।

बहुत सारे लोगों ने लॉकडाउन के समय गद्दीदारों द्वारा उनका फोन नहीं उठाने की शिकायत की। उस मौके पर गृहस्था ने बहुत मदद की। लॉकडाउन के समय गृहस्थाओं के लिए काम करने वाले बुनकरों ने उनसे उधार लिया। इस उधार पर कोई ब्याज नहीं लिया गया। लेकिन गद्दीदारों को साड़ी बेचने वाले गृहस्थाओं ने बुनकरों की कोई मदद नहीं की और कभी-कभी उनके साथ बहुत बुरा बर्ताव किया।

हमने लॉकडाउन के समय सभी बुनकरों को कर्ज लेते हुए पाया। इससे बुनकरों की आर्थिक स्थिति का पता चलता है। उन्होंने कहा “बुनकरों की हालत पहले भी कभी अच्छी नहीं थी। आर्थिक रूप से बुनकर कमजोर ही था। रोज खाने भर का ही काम कर लेता था। इतनी कमाई नहीं होती थी कि सेविंग कर सके”। कुछ अन्य बुनकरों ने बताया “ज्यादातर बुनकरों के पास बैंक अकाउंट ही नहीं है। बचत करना चाहिए ये इन लोगों ने सीखा ही नहीं है। अचानक लंबा लॉकडाउन हो जाने से बना हुआ माल बिका नहीं और खाने कि मुसीबत आ गयी। पहले से गरीबी, फिर बचत नहीं होने के वजह से कर्जा सभी ने खाने के लिए लिया। कुछ तो इतने गरीब हैं कि उन्हें किसी ने कर्जा तक नहीं दिया। ऐसे बुनकरों को लॉकडाउन में एनजीओ के मदद से खाना मिल जा रहा था, लेकिन अब खाने-खाने को मोहताज हैं”।

हमारे अध्ययन में खाने की ज़रूरत पूरा करने के लिए सबसे ज्यादा लोगों को कर्जा लेते हुए पाया गया। सर्वे में हिस्सा लेने वालों में 170 लोगों ने (98 प्रतिशत) ने इसे कर्जा लेने का मुख्य कारण बताया। सरकार पर्याप्त राशन दे नहीं पायी और एनजीओ सभी लोगों तक पहुँचने की कोशिश की लेकिन उनकी भी एक सीमा थी। बहुत सारे बुनकर जिसमें महिला और पुरुष दोनों शामिल हैं, के अनुसार बनारस में लॉकडाउन के बाद स्थिति और ख़राब है। इसका कारण लॉकडाउन के समय एनजीओ ज़रूरतमंदों के क्षेत्र में राहत सामग्री बाँट रही थी और रसोई चला रही थी लेकिन लॉकडाउन के बाद ये बंद हो गया और बुनाई का काम ठीक तरह से शुरू नहीं हो पाया। बुनकरों के पास बहुत कम काम है।

एकबार साड़ी का काम पूरा हो जाने के बाद महिलाओं को उसपर टिकली लगाने का काम मिलता है। साड़ी का काम बहुत कम हो जाने के कारण महिलाओं को टिकली लगाने का काम भी नहीं मिल रहा है। साड़ी का बाज़ार भी बहुत कम हो गया है।

चित्र 10 और 11 के अनुसार लॉकडाउन के पहले बुनाई के काम में सभी महिला और पुरुषों को नियमित रूप से काम मिल जाता था। उन्हें खाने के लिए कर्जा लेने की ज़रूरत नहीं होती थी। लॉकडाउन के बाद से लोगों को नियमित रूप से काम नहीं मिल रहा है और राहत का काम रुक गया है। लॉकडाउन के बाद गरीबों को और ज्यादा परेशानी हो रही है और उन्हें खाने की दिक्कत होने लगी है।

127 (73 प्रतिशत) लोगों ने बीमारी के कारण कर्ज लिया। ये स्वाभाविक है कि पोषण कि कमी के कारण लोग बीमार होंगे। कई जगहों पर नल के पानी भी साफ नहीं थे। घर पर खाली बैठेने के लिए मजबूर लोग अवसाद और तनाव के शिकार भी हुए। कोविड महामारी के डर से लोग अस्पताल जाने से भी डर रहे थे। लेकिन सर्जरी, प्रसव और अन्य गंभीर बीमारियों के कारण उन्हें अस्पताल जाना पड़ा।

20 (12 प्रतिशत) लोगों ने करघा मरम्मत करने, चाय बिस्कुट-पान की छोटी दुकान खोलने, बिजली बिल का भुगतान करने, घर में शादी होने और यहाँ तक अंतिम क्रिया के लिए भी कर्ज लिया।

लोहता, बनारस के रहने वाले अनीस अहमद पाँच सदस्यों के परिवार में अकेला कमाने वाले हैं। वे किसी और कि पावर लूम पर काम करते थे और उन्हें मजदूरी मिलती थी। पहले तो उनका काम बंद हो गया। इसके बाद उन पर भारी बिजली बिल का बोझ आ गया। बिजली बिल नहीं भर पाने के कारण उनका बिजली कनैक्शन काट दिया गया है। वह बिजली बिल चुकाने के लिये कोई दूसरा काम करने की सोच रहे हैं।

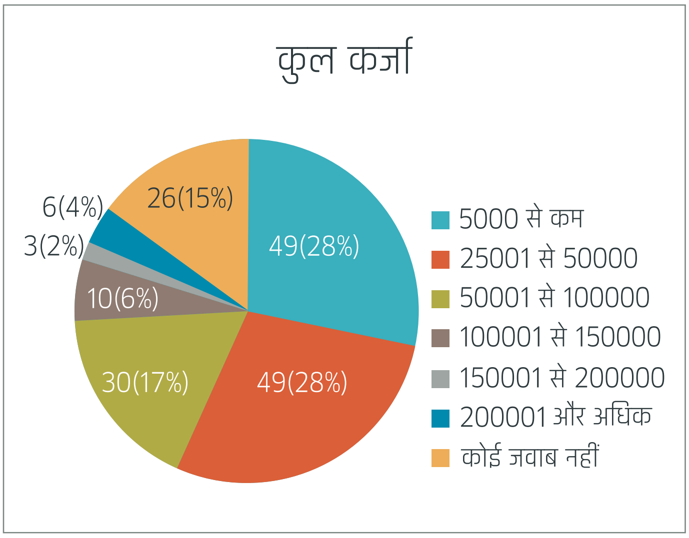

चित्र 18: कुल कर्जा

49 (28 प्रतिशत) लोगों पर 25000 रूपया से कम कर्जा है। इतने ही संख्या के लोगों पर 25001 से 50000 रूपया कर्जा है, 30 (17 प्रतिशत) लोगों पर 50001-100000 लाख रूपया का कर्जा है, 10 लोगों (6 प्रतिशत) पर एक लाख से ऊपर डेढ़ लाख का कर्जा, 3 लोगों पर डेढ़ लाख से ऊपर और 2 लाख तक का कर्जा है और 6 लोगों पर 2 लाख रूपया से ज़्यादा कर्जा है।

ऊपर के आंकड़ों से स्पष्ट है कि 56 प्रतिशत के ऊपर 50000 रूपए तक कर्जा है। सर्वे से बनारस में मऊ, आजमगढ़ और गोरखपुर के तुलना में कर्ज कि स्थिति ज़्यादा ख़राब है। आजमगढ़, मऊ और गोरखपुर के 33 लोगों में सिर्फ 2 (6 प्रतिशत) लोगों के ऊपर 50000 से 1 लाख रूपए के बीच कर्जा है। बनारस में 171 लोगों में 55 लोग (32 प्रतिशत) के ऊपर 50000 से ऊपर और 1 लाख तक कर्जा है, 19 (11 प्रतिशत) लोगों पर 1 लाख से ज़्यादा कर्जा है।

पाँच सदस्य परिवार के नसीरुद्दीन नक्की घाट के रहने वाले हैं। वे उनके ऊपर 97000 रूपया के कर्ज के कारण सो नहीं पा रहे हैं। उन्होंने खाने और दवाई के लिए कर्ज लिया था। लॉकडाउन से पहले वे किसी के पावर लूम पर काम करते थे और उनकी पत्नी साड़ी पर टिकली लगाने का काम करती थी। लॉकडाउन के पहले उनके परिवार की आमदनी महीने में 6000 रूपए थी। वे लॉकडाउन के समय प्रशासन द्वारा भेदभाव करने की शिकायत करते हैं। वे अपने अच्छे दिनों का इंतजार कर रहे हैं, वे पूछते हैं मोदी जी की तरह हमारे अच्छे दिन कब आयेंगे?

26 लोगों (15 प्रतिशत) ने कर्ज के बारे में बात करने से इनकार किया।

बातचीत में कुछ महिलाओं ने कहा की गरीब लोगों को कोई कर्ज नहीं देता। “पैसे वालों को ही लोग कर्जा देते हैं। हमारे जैसे गरीबों को कोई कर्जा भी नहीं देता”। हमने फील्ड के दौरे में पाया की गरीबों को कर्ज की सबसे ज़्यादा ज़रूरत होने के बावजूद उन्हें कोई कर्ज नहीं देता था क्योंकि उनके द्वारा कर्जा लौटा पाने की निश्चयता नहीं होती है। इस स्थिति ने बुनकरों को बर्तन बेचने, खून बेचने और चरम स्थिति में आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया।

जलालीपुरा, बनारस के रहने वाले अलावद्दीन कहते हैं की क्योंकि मुझे किसी ने कर्जा नहीं दिया मैं सब्जीवाले, दूधवाले, राशनवाले का पैसा नहीं दे पा रहा हूँ और कई

महीनों से उनसे उधार पर सामान ले रहा हूँ। उन्होंने लॉकडाउन के समय राहत के काम में भेदभाव होने का आरोप लगाया। उन्होंने बताया “कुछ लोग राहत किट बाँट रहे थे। मैं लेने गया लेकिन मुझे नहीं मिला क्योंकि सिर्फ हिंदुओं को दिया जा रहा था।

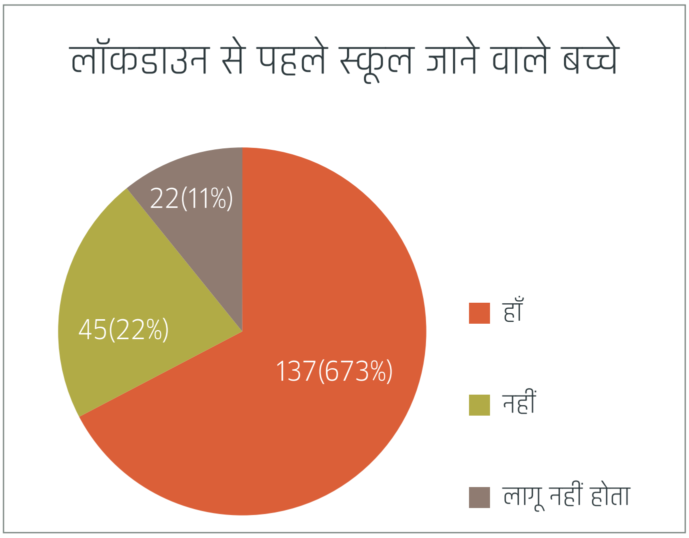

चित्र 19 : लॉकडाउन से पहले स्कूल जाने वाले बच्चे

लॉकडाउन के कारण शिक्षा पर बहुत बुरा असर पड़ा। लॉकडाउन के 11 महीने बाद स्कूल बंद है। चित्र 19 के अनुसार 204 परिवारों में 137 परिवारों (67 प्रतिशत) के बच्चे लॉकडाउन से पहले स्कूल जाते थे। 22 प्रतिशत परिवारों के बच्चे बहुत छोटे होने के कारण स्कूल जाने में समर्थ नहीं थे। 11 प्रतिशत परिवारों में बच्चे नहीं थे।

67 प्रतिशत लोगों के बच्चे स्कूल जाते थे। स्कूलों में दाखिला लेने वाली लड़कियों की संख्या भी ठीक-ठाक है। इससे माँ-बाप में बेटियों को पढ़ाने की चेतना होने का पता चलता है। ये लड़कियां बुनाई से जुड़े काम में अपने माता-पिता को मदद करती हैं। लड़कियों का पढ़ाई में अच्छी होना और साथ में उनका घर के काम में हाथ बटाने के कारण स्कूल भेजा जाता है। माँ-बाप को लड़कियों के स्कूल जाने को लेकर कोई शिकायत नहीं है।

कुछ परिवारों में सभी बच्चे स्कूल नहीं जा रहें हैं और इसका सबसे प्रमुख कारण गरीबी है। उदाहरण के लिए किसी परिवार के पाँच बच्चों में 2 बच्चे स्कूल जा रहें हैं और बाकी बच्चे दिहाड़ी पर काम करने जाते हैं।

लल्लापुरा, बनारस के 40 साल की बिलकिस अनपढ़ औरत हैं। उनके परिवार में सात सदस्य हैं। इसमे 2 बेटे और 5 बेटियाँ हैं। बिलकिस टिकली लगाने का काम और माला बनाने का काम करती हैं। उनका बेटा साड़ी की गद्दी दुकान पर काम करता था। पाँच साल पहले बिलकिस के पति की मौत हो चुकी है। उस समय से वह अपने बड़े बेटे के साथ मिलकर घर चला रही हैं। वह अपने बच्चों को खासकर बच्चियों को पढ़ाना चाहती हैं ताकि उनका भविष्य बेहतर हो सके। लेकिन पति के मौत के बाद पति के रिश्तेदारों ने बच्चों को और विशेष रूप से लड़कियों को स्कूल जाने नहीं दिया और एक समय बाद उन्होंने बिलकिस के साथ बातचीत भी बंद कर दी। इसलिए बिलकिस ने अपने बच्चों के साथ अलग रहने का फ़ैसला लिया। उन्हें पति के हिस्से से एक कमरा मिला जो संयोग से उनके घर के पास था। बिलकिस बच्चों के साथ वहाँ रहने लगी। बिलकिस की दूसरी बेटी कौसर पढ़ाई में बहुत तेज है। उसने काशी विद्यापीठ से राजनीति विज्ञान में एमए की पढ़ाई पूरी की है और अब यूपीएससी की तैयारी कर रही है। पिछले साल वह दो नंबर की कमी से कामयाब नहीं हो पायी। बड़ा बेटा भी बहन के भविष्य को बेहतर बनाने के लिए मेहनत कर रहा है। लॉकडाउन के समय उसने घर का खर्चा चलाने और कौसर की पढ़ाई के लिए कई जगहों से कर्जा लिया। कर्जा बढ़ता गया और कर्ज चुकाने के बारे में सोचकर वह इतना परेशान हुआ की 2020 के अक्टूबर में उसने आत्महत्या कर ली। अब परिवार की ज़िम्मेदारी कौसर पर आ गयी है और इसे पूरा करने के लिए वह महीने में सिर्फ 4500 रूपए पर 10 से 5 बजे केबल ऑपरेटर का काम करने लगी हैं। इस काम में उसे एक दिन भी छुट्टी नहीं मिलती। अब वह पढ़ाई के लिए समय नहीं निकाल पाती। लॉकडाउन ने एक परिवार को तबाह कर दिया और उसके साथ एक होनहार युवती के भविष्य को समाप्त कर दिया।

आजमगढ़ के मुबारकपुर जिले में एक गली में फील्ड दौरे के समय हमारी मुलाक़ात अमीरा खातून और अनीसा खातून से हुई। अमीरा 6 साल की हैं और अनीसा की उम्र 5 साल है। अमीरा हिजाब से अपना सिर ढकी हुई थी

और पाँच–छ लड़कियों के समूह में बैठी थी। ये लड़कियां एक ही उम्र की थीं। हम लोग इनके साथ बैठ गए और उनके कुछ फोटो लिए। लेकिन जब हमने कैमरा निकाला तो लड़कियां भोजपुरी में बोल पड़ी "हम लोग फोटो नहीं खिचायेंगे। लड़कियों का फोटो खिंचवाना मना है। लड़कों का फोटो खींचो। लडकियों का फोटो खिंचवाना गुनाह है"। हम लोगों ने कैमरा बंद किया। हमने लड़कियों से पूछा की वे स्कूल जाती हैं? अमीरा ने बताया की वे मदरसा जाते थे। हमने उससे पूछा की उन्हें किसने "फोटो खिंचवाने से गुनाह होने की बात सिखाई। अमीरा कहती हैं "अम्मी अब्बू कहते हैं। हम घर के बाहर नहीं जाते। हम घर में रहते हैं"।

इस बातचीत से पता चलता है की मुबारकपुर में मुसलमान समुदाय 6 साल के छोटे बच्चियों को क्या सिखा रहा है? मुबारकपुर के मुसलमान समुदाय बहुत कट्टर हैं और वे इस्लाम की 7वीं सदी की परंपरा का अनुसरण करते हैं। वे महिलाओं की शिक्षा और उनकी आज़ादी के सख़्त खिलाफ हैं। महिलाओं/लड़कियों को घर से बाहर नहीं जाने दिया जाता है और उन्हें बुर्का और हिजाब पहनने के लिए मजबूर किया जाता है। यह बहुत घुटन भरी स्थिति है। ये दोनों केस मुसलमान समुदाय के गरीब बुनकर परिवारों के हैं।

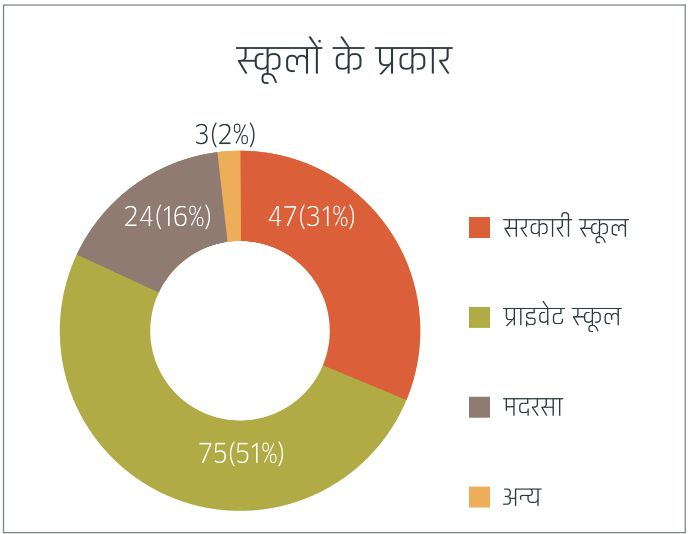

चित्र 20: स्कूलों के प्रकार

चित्र 20 में बच्चों द्वारा किस तरह के स्कूलों में दाखिला लिया गया है, उसका आंकड़ा दिया गया है। इससे पता चलता है की 76 परिवारों (51 प्रतिशत) ने अपने बच्चों

को निजी स्कूलों में भर्ती किया है। यह आंकड़ा सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले परिवारों से 20 प्रतिशत ज़्यादा है। 47 परिवार (31 प्रतिशत) ने बच्चों के लिए सरकारी स्कूलों को चुना हैं। निजी स्कूलों में पढ़ाने के पीछे पड़ोस में सरकारी स्कूल नहीं होना सबसे प्रमुख कारण है। अक्सर निजी स्कूलों में पढ़ाई का स्तर अच्छा नहीं होता है। ये स्कूल कथित रूप से अंग्रेज़ी माध्यम के होते हैं और इन्हें बेईमान लोग चलाते हैं। इसलिए सरकारी स्कूलों में बच्चों को पढ़ाने वाले अभिभावकों को सरकारी स्कूलों की बनिस्बत इन निजी स्कूलों पर भरोसा नहीं रहता है।

24 परिवार (16 प्रतिशत) बच्चों को मदरसा भेजते हैं। सर्वे में हिस्सा लेने वाले 24 लोगों में 16 (67 प्रतिशत) अनपढ़ हैं, 3 (12 प्रतिशत) तीसरी कक्षा तक पढ़े हैं, 4 लोगों (17 प्रतिशत) ने 5 वीं कक्षा तक पढ़ाई की है और सिर्फ 1 ने 12वीं तक पढ़ाई की है। इससे परिवार का शैक्षणिक स्तर का बच्चों के लिए स्कूल चुनने में महत्वपूर्ण भूमिका होने का पता चलता है।

तीन लोगों ने सर्वे में पूछे गए विकल्पों में से किसी का चयन नहीं करते हैं। उनमें एक ने बताया की उनके आसपास कोई स्कूल नहीं होने के कारण बच्चे को स्कूल नहीं भेज सकते, एक ने अपने बच्चे का आंगनवाड़ी जाने की बात की और तीसरा हमारे सवाल का जवाब नहीं देते हैं।

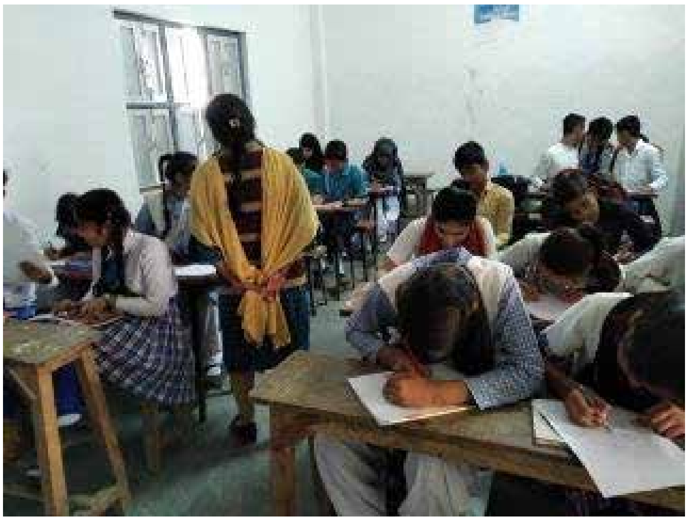

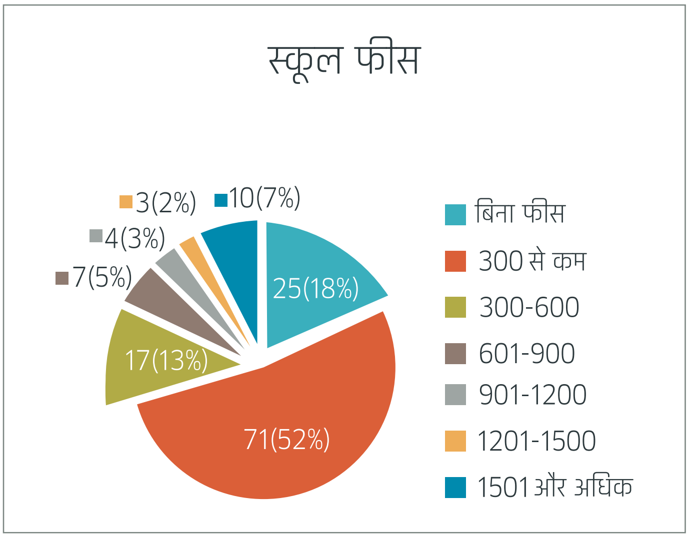

चित्र 21: स्कूल फीस

चित्र 21 में सर्वे में हिस्सा लेने वाले लोगों द्वारा बच्चों की स्कूल फीस के लिए दिये गये रकम को प्रस्तुत किया गया है। सर्वे में 204 लोगों ने हिस्सा लिया और इनके परिवारों के कुल 433 बच्चे स्कूल जाते हैं। इन लोगों ने कुल 61165 रूपए फीस के तौर पर दिए। इस हिसाब से एक बच्चे का औसत फीस 141 रूपया प्रति महीना है।

ऊपर दिये गये आंकड़े के अनुसार 25 परिवारों (18 प्रतिशत) ने बच्चों की पढ़ाई के लिए कोई फीस अदा नहीं की। ये सभी बच्चे सरकारी स्कूल में पढ़ते हैं, एक-दो मदरसा जाते हैं।

71 परिवार (52 प्रतिशत) ने बच्चों की फीस के बतौर 300 रूपया से कम अदा किया। इन परिवारों के ज़्यादातर बच्चे मदरसे में पढ़ते हैं और वहाँ फीस भी बहुत कम है। फीस केवल 20 रूपए प्रति महीना है लेकिन कुछ निजी मदरसे हैं जहाँ महीने में 200-300 रूपए फीस ली जाती है।

17 परिवार (13 प्रतिशत) बच्चों की फीस के लिए 301-600 रूपए खर्च करते हैं। 7 परिवार (5 प्रतिशत) फीस पर 601-900 रूपए खर्च करते हैं। 4 परिवार (3 प्रतिशत) फीस पर 901-1200 रूपए खर्च करते हैं और 3 परिवार (2 प्रतिशत) परिवार 1201-1500 रूपए फीस देते हैं। 10 परिवार (7 प्रतिशत) फीस पर 1500 रूपए से ज़्यादा खर्चा करते हैं। इन परिवारों में 3-4 से ज़्यादा बच्चे स्कूल जाते हैं।

हमें 22 लोगों ने बताया की उनके बच्चे सरकारी स्कूल में पढ़ते हैं लेकिन उन्हें कुछ फीस देनी पड़ती है। ऐसा नहीं होना चाहिए क्योंकि शिक्षा के अधिकार कानून के अनुसार 6-14 साल के उम्र के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा मिलना चाहिए। इसके बावजूद भ्रष्टाचार और जागरूकता की कमी के कारण कुछ माता-पिता को फीस देनी पड़ती है।

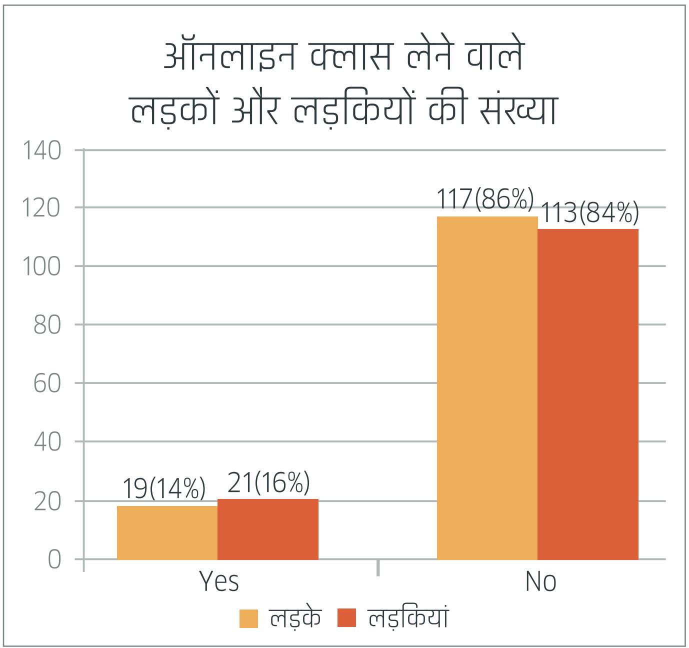

चित्र 22 : ऑनलाइन क्लास लेने वाले लड़कों और लड़कियों की संख्या

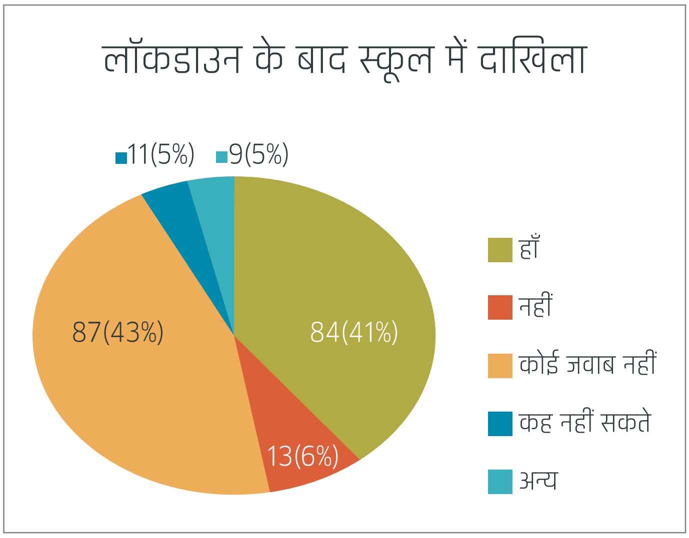

चित्र 23 : लॉकडाउन के बाद स्कूल में दाखिला

कोविड महामारी के कारण शिक्षा बुरी तरह से प्रभावित हुई है। बच्चों में प्रतिरोधक क्षमता कम होने के कारण उनमें इस बीमारी से पीड़ित होने की संभावना ज़्यादा रहती है। सरकार वास्तविकता को नजरंदाज करके ऑनलाइन क्लास शुरू करने की घोषणा करती है। जुलाई और अगस्त 2020 से स्कूल में ऑनलाइन क्लास शुरू किया जाता है।

चित्र 22 से देखा जा सकता है की 204 लोगों में से 137 लोग बच्चों को ऑनलाइन क्लास के लिए दाखिला करवाते हैं। इन 137 परिवारों में स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या 270 है (136 लड़के और 134 लड़कियां)। ऊपर के चित्र से साफ है की 117 लड़के (86 प्रतिशात) और 113 लड़कियां (84 प्रतिशात) ऑनलाइन क्लास नहीं लेती हैं। सिर्फ 19 लड़के (14 प्रतिशत) और 21 (16 प्रतिशात) लड़कियों के पास या उनके परिवार के पास स्मार्ट फोन है और वे ऑनलाइन शिक्षा ले रहे हैं।

निम्न आय वाले परिवारों के बच्चों को कई तरह की दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, परिवार में सिर्फ एक स्मार्ट फोन है, स्मार्ट फोन में कई बार डेटा नहीं रहता है, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में नेटवर्क की समस्या है। लोगों ने पूछा जब परिवार के पास एक भी स्मार्ट फोन नहीं है तो बच्चे किस तरह ऑनलाइन पढ़ाई कर सकते हैं?

चित्र 23 के अनुसार 84 (41 प्रतिशत) परिवार अपने बच्चों का स्कूल में दाखिला करवायेंगे जबकि 13 (6 प्रतिशत) परिवारों ने उनके द्वारा सामना की जा रही आर्थिक दिक्कतों के कारण बच्चों को स्कूल नहीं भेजेंगे। बच्चों को स्कूल नहीं भेजने के पीछे मुख्य कारण आर्थिक स्थिति है।

11 लोग (5 प्रतिशत) अपने परिवार के बच्चों को स्कूल भेजने या नहीं भेजने के बारे में अभी तक निर्णय नहीं ले पाये हैं। वे आने वाले समय में स्थिति को देखकर निर्णय लेंगे।

87 लोगों (43 प्रतिशत) ने इस सवाल का जवाब नहीं दिया। वे बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने की जद्दोजहद कर रहे हैं और पढ़ाई के बारे में सोचने की स्थिति में नहीं हैं। 9 लोगों ने (5 प्रतिशत) ने भूख, गरीबी का हवाला देकर बच्चों के काम करने की बात कही जिससे परिवार को मदद मिल सके।

मोटे तौर पर हम कह सकते हैं की सर्वे के समय लोग बच्चों को स्कूल में भर्ती करने के बारे में दुविधा में थे। बुनकरों ने स्थिति के मद्देनजर निर्णय करने की बात कही। गरीबी ने बुनकरों को सबसे ज़्यादा प्रभावित किया है, वे परिवार को आर्थिक रूप से स्थिर करने के लिए कोशिश कर रहे

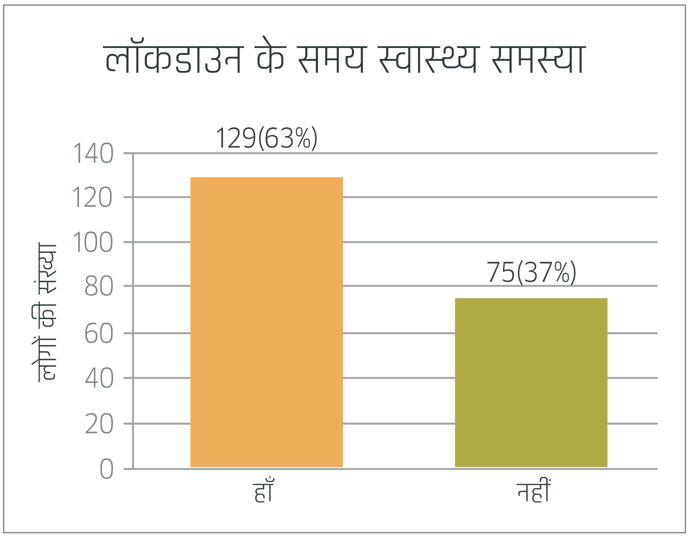

Chitr 24: लॉकडाउन के समय स्वास्थ्य समस्या

पास पैसा नहीं था और सरकार द्वारा दिया गया राशन हमेंशा अपर्याप्त रहा। उपयुक्त पोषक भोजन की कमी से लोग बीमार होने लगे। ऊपर दिये गए चार्ट से हम देख सकते हैं की 204 लोगों में 129 (63 प्रतिशत) लोगों के परिवारों में 1-2 सदस्य गंभीर या सामान्य बीमारी से पीड़ित थे। 75 लोगों (37 प्रतिशत) ने लॉकडाउन के समय उनके परिवार के किसी भी सदस्य के बीमार नहीं होने के बारे में बताया।

चित्र 25 में सर्वे में हिस्सा लेने वाले लोगों के परिवार के सदस्यों का लॉकडाउन के समय होने वाले बीमारी और स्वास्थ्य समस्या को दिखाया गया है। सर्दी, खांसी और बुखार कोविड बीमारी का लक्षण है। मौजूदा अध्ययन में 58 (45 प्रतिशत) लोग इसी तरह के लक्षण से पीड़ित थे। सरकार ने लोगों से इस तरह का लक्षण दिखने पर अस्पताल जाने, सामाजिक दूरी बनाए रखने, मास्क पहनने और हमेंशा सेनिटाइजर उपयोग करने का निर्देश दिया। हालांकि सरकार के ये सभी सलाह गरीब तथा निम्न आय के लोगों के लिए बेमानी है।

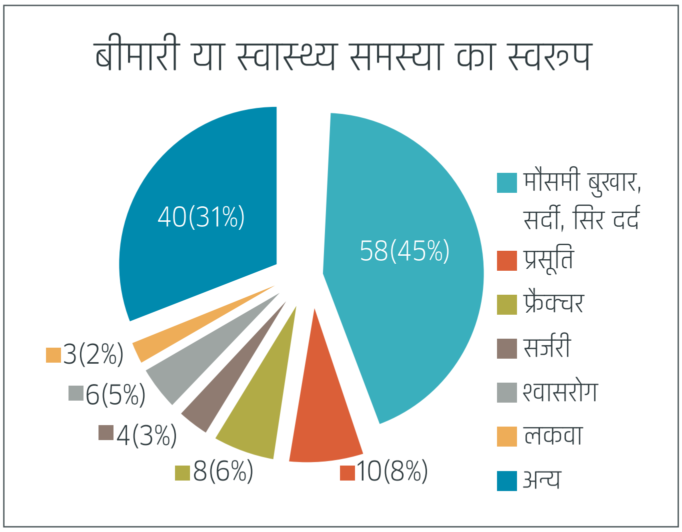

चित्र 25: बीमारी या स्वास्थ्य समस्या का स्वरुप

चित्र 25 में सर्वे में हिस्सा लेने वाले लोगों के परिवार के सदस्यों का लॉकडाउन के समय होने वाले बीमारी और स्वास्थ्य समस्या को दिखाया गया है। सर्दी, खांसी और बुखार कोविड बीमारी का लक्षण है। मौजूदा अध्ययन में 58 (45 प्रतिशत) लोग इसी तरह के लक्षण से पीड़ित थे। सरकार ने लोगों से इस तरह का लक्षण दिखने पर अस्पताल जाने, सामाजिक दूरी बनाए रखने, मास्क पहनने और हमेंशा सेनिटाइजर उपयोग करने का निर्देश दिया। हालांकि सरकार के ये सभी सलाह गरीब तथा निम्न आय के लोगों के लिए बेमानी है।

छोटे कमरों और निम्न आय के लोगों के मोहल्लों में लोग बहुत पास पास कंधे से कंधा मिलाकर रहते हैं, अक्सर एक ही कमरे में रहने को मजबूर हैं।

हमने देखा की बड़ी संख्या में लोग दो वक्त का खाना भी नहीं जुटा पाते। वे क्या सेनीटाइजर और मास्क खरीदेंगे। लोगों ने कहा "ऊपर वाले के भरोसे हैं। हमारे पास कहाँ पैसा है की मास्क और दवा लें। अल्लाह है, भगवान है, वह जिस हाल में रखें, हम उसके सहारे हैं"।

8 (6 प्रतिशत) लोगों को शरीर के किसी हिस्से में फ्रेक्चर हुआ, 4 (3 प्रतिशत) लोगों का ऑपरेशन हुआ था, 10 महिला (8 प्रतिशत) गर्भवती थीं और उन्हें बच्चा हुआ। 6 (5 प्रतिशत) लोग अस्थमा से पीड़ित थे। इनमें नक्की घाट के रहने वाला एक आदमी की बनारस सरकारी अस्पताल में चिकित्सा के समय मौत हो गई।

इसके अलावा और तीन लोगों की किसी बीमारी से मौत हुई। लॉकडाउन और पैसे की कमी के कारण इन लोगों के परिवार वाले इन्हें अस्पताल नहीं ले जा पाये। इनमें से एक मऊ के थे और दूसरे बनारस के जलालीपुरा के रहने वाले थे।

बजरडीहा के 59 साल के मुस्तक़ीम ने कहा की लॉकडाउन के समय काम नहीं रहने के कारण उनका बड़ा बेटा मानसिक रूप से बीमार हो गया। वे पैसा उधार लेकर बेटा का इलाज करा रहे हैं।

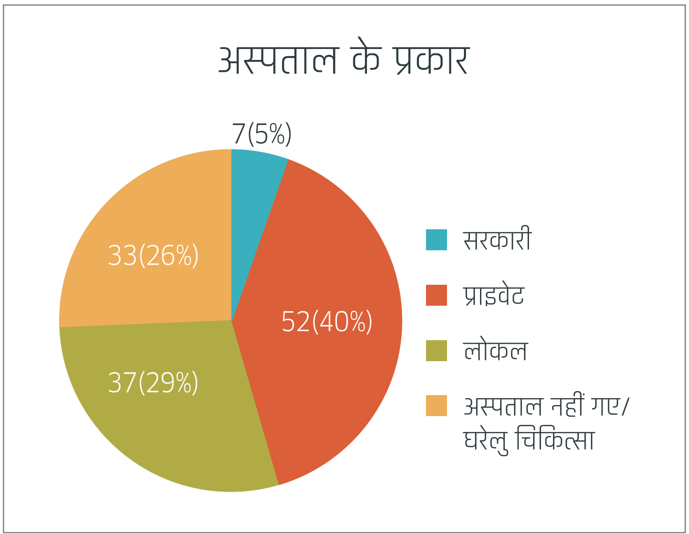

चित्र 26: अस्पताल का प्रकार

चित्र 26 के अनुसार 52 (40 प्रतिशत) लोग सरकारी अस्पताल के बनिस्बत निजी अस्पताल जाना पसंद करते हैं। 37 लोगों (29 प्रतिशत) ने छोटी-मोटी बीमारी के लिए दवाई की दुकान पर गये या समुदाय के निजी डॉक्टर के पास गये और सिर्फ 7 लोग (5 प्रतिशत) अपने परिवार के लोगों को सरकारी अस्पताल ले गये। 33 लोग (26 प्रतिशत) इतने गरीब हैं की वे छोटी-मोटी बीमारी को गंभीरता के साथ नहीं लेते। उनका कहना है की ये ज़िंदगी का हिस्सा हैं और मौसम के बदलाव से होता है।

लोगों से जब सरकारी अस्पताल नहीं जाने का कारण पूछा गया तो उन्होंने बताया की "पहले हम सरकारी अस्पताल ही गये थे लेकिन वहाँ ठीक से उनका इलाज नहीं होने के कारण वे निजी अस्पताल गये"।

नक्की घाट की रुख़साना ने बताया कि उनके पति किसी और के पावर लूम पर काम करते थे और महीने में 5000 रूपए कमाते थे। वे खुद साड़ी में टिकली लगाने का काम करती हैं जिससे उन्हें महीने में 1000 रूपए मिलते हैं। लॉकडाउन से पहले उनके सात सदस्य के परिवार की महीने में कमाई 6000 रूपए थी। रुख़साना के पति अस्थमा के मरीज हैं और सरकारी अस्पताल में उनका इलाज चल रहा था। अस्पताल दूर होने के कारण और पुलिस की सख्ती के कारण वह लॉकडाउन के समय सरकारी अस्पताल नहीं जा पाये और उनकी मौत हो गयी।

जलालीपुरा के वकील अहमद ने अपनी पत्नी को खो दिया। वकील के पास पत्नी को अस्पताल ले जाने का पैसा नहीं था। अस्पताल दूर था और लॉकडाउन के समय सरकारी परिवहन बंद थे।

लल्लापुरा के सलमान ने आपबीती सुनाई। लॉकडाउन के समय सलमान पत्नी का इलाज कराने के लिए सरकारी अस्पताल गये थे लेकिन वहाँ डॉक्टर ने पति-पत्नी दोनों को अपमानित किया। सलमान ने कहा की डॉक्टर को उसकी पत्नी की कोई परवाह नहीं थी। सलमान की पत्नी ने जब डॉक्टर से खाने में परहेज करने के बारे में पूछा तो उसने कहा"जो भी खाना चाहती हैं खाइये, लेकिन मुझसे मत पूछिये"। यह सिर्फ मरीज के प्रति रूखा व्यवहार नहीं है बल्कि डॉक्टर के नैतिक उसूलों के खिलाफ भी है।

सर्वे में हिस्सा लेने वालों में कई अन्य लोगों ने सरकारी अस्पताल के कर्मचारियों पर ठीक से बात नहीं करने और उन्हें अपमानित करने की शिकायत की।

निजी अस्पताल जाने का मुख्य कारण :

- सरकारी अस्पताल लोगों के रहने की जगहों से काफी दूर है।
- सरकारी अस्पताल में साफ-सफाई की कमी है।
- सरकारी परिवहन नहीं है।

फील्ड में दौरा करते समय हमने पाया की लोग सरकारी अस्पताल जाने से बच रहे थे क्योंकि उन्हें जांच में कोविड होने

की पुष्टी होने पर इलाज करवाना होगा और उसके लिए उनके पास पैसा नहीं था।

सरायमोहाना के दो युवा संजय गुप्ता (18) और विजय गुप्ता (20) के पिता की मौत कई साल पहले हो चुकी है। उनकी माँ राजकुमारी देवी को 11000 रूपए मासिक पेंशन मिलती थी क्योंकि उनके पति सरकारी विभाग में काम करते थे। इस पैसे से वह घर चलाती थी। लॉकडाउन के समय वह बीमार हो गयी और उन्हें सुंदर लाल अस्पताल जिसे बीएचयू अस्पताल भी कहा जाता है, में भर्ती किया गया। 2020 के 20 जुलाई उन्हें कोविड होने की पुष्टी हुई और 30 जुलाई को उनकी मौत हो गई। कोविड से उनकी मौत होने को लेकर उनके बेटे विजय को संदेह है। अस्पताल से बारबार गुहार लगाने के बावजूद मृत्यु प्रमाण-पत्र जारी नहीं किया। इससे बीएचयू जैसे नामी अस्पताल में भ्रष्टाचार या लापरवाही का शक होता है।

बड़ीबाज़ार, बनारस के नुरुल हसन अपनी पत्नी की डेलीवरी के लिए सरकारी अस्पताल ले गये थे। लेकिन

अस्पताल की हालत उन्हें ठीक नहीं लगी और अस्पताल कर्मचारियों को मरीज के बारे में किसी तरह की परवाह नहीं थी। वे पत्नी को निजी अस्पताल ले आए जहाँ उनकी पत्नी की हालत ठीक होने लगी। लेकिन इस अस्पताल का भारी बिल चुकाने के लिए उन्हें कर्जा लेना पड़ा क्योंकि अस्पताल का खर्चा उठाना उनकी आर्थिक क्षमता से बाहर था। ऊपर दिये गये उदाहरणों से स्पष्ट है की लोग स्वास्थ्य के मुद्दे पर सरकारी अस्पताल पर क्यों भरोसा नहीं करते।

पानी और सेनीटेशन

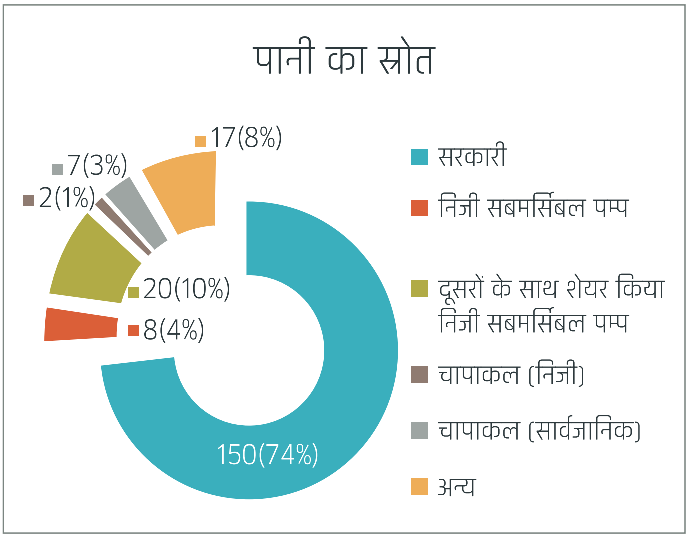

चित्र 27: पानी का स्रोत

हम सभी जानते हैं की पीने का साफ पानी लोगों को कई तरह की बीमारियों से बचाता है। लेकिन साफ पानी इस इलाके में बिरले ही मिल पाता है। जैसा की ऊपर दिये गये आंकड़ों से पता चलता है की 150 लोगों (74 प्रतिशत) को सरकार द्वारा पूर्ति किया गया पानी मिलता है। लोग पानी के लिए महीने में 50 रूपए देते हैं। आम तौर पर लोगों को सवेरे 2 घंटा और शाम को एक घंटा पानी मिलता है। लेकिन पानी बहुत धीरे–धीरे आता है। 20 लोगों (10 प्रतिशत) को सबमरसिबल से पानी मिलता है जिसे वे दूसरों के साथ साझा करते हैं। 8 लोगों (4 प्रतिशत) के पास अपना सबमरसिबल है। 2 लोगों को निजी हैंड पंप से पानी मिलता है जबकि 7 लोग निजी हैंड पंप से पानी लेते हैं।

17 लोग (8 प्रतिशत) कुएं या बोरवेल या पड़ोसी के पानी के टैप से पानी लेते हैं। इन लोगों को महीने में इसके लिए 50 रूपए देना पड़ता है।

बनारस के बजरडीहा से सर्वे में हिस्सा लेने वाले लोग सरकारी सबमरसिबल से महीने में 50 रूपए देकर पानी लेते हैं। इस व्यवस्था को स्थानीय लोग चलाते हैं। बजरडीहा, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के संसदीय कार्यालय से लगभग 3 किलोमीटर दूर है।

रेवरी तालाब के अब्दुल गणी बताते हैं की सरकारी पाइप लाइन से गंदा पानी आता है। इसलिए स्थानीय समुदाय ने अपने खर्चे से अपनी बोरवेल व्यवस्था बनाई है। एक बोरवेल से 15-20 परिवार महीने में 800 रूपए देकर पानी ले सकते हैं। सभी खर्चा समुदाय के लोग आपस में बाँट लेते हैं।

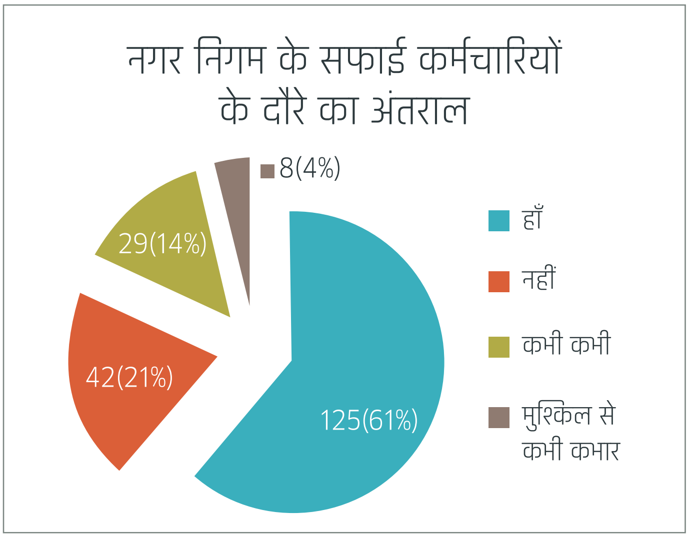

चित्र 28ः नगर निगम के सफाई कर्मचारियों के दौरे का अंतराल F

अस्वास्थ्यकर स्थिति में आम तौर पर फैलने वाली बीमारियों को फैलने से रोकने में साफ–सफाई रखना मददगार साबित होता है। इन बीमारियों का फैलना आम बात है। ऊपर दिये गए चित्र के अनुसार 125 लोगों (61 प्रतिशत) ने बताया की लॉकडाउन के समय सफाई कर्मचारी उनके क्षेत्र में नियमित आते थे जबकि 42 लोगों (21 प्रतिशत) ने बताया की लॉकडाउन के समय में उनके इलाके की सड़क को साफ करने और कूड़ा इकट्ठा करने के लिए कोई नहीं आता था।

29 लोगों ने (14 प्रतिशत) ने बताया की सफाई कर्मचारी कभी–कभी आते थे। 8 लोगों (4 प्रतिशत) ने बताया की उन्होंने अपने इलाके में साफ–सफाई करने के लिए किसी को आते हुए नहीं के बराबर देखा है। लोहता में स्थानीय लोगों ने बताया की सफाई कर्मचारी सिर्फ हिंदुओं के रहने वाले जगहों पर सफाई करने के लिए आते हैं लेकिन मुसलमानों के रहने वाले जगहों पर बिरले ही आते हैं। इस इलाके के लोग खुद साफ–सफाई करते हैं। लोहता के महमूदपुर के बारे में पता चला की मेहतर उनकी सामुदायिक शौचालय को साफ करने के लिए नहीं आते। वह सरकारी स्कूल के शौचालय को साफ करते हैं लेकिन वहाँ से आधा किलोमीटर दूर रहने वाले लोगों के क्षेत्र में नहीं आते। हमें ये भी पता चला की त्यौहारों के समय भी इस इलाके में सफाई कर्मचारी बिरले ही आते हैं। लोगों को खुद से कूड़ा फेंकना पड़ता है।

बनारस, नक्की घाट की महिलाओं ने बताया की उन्होंने तीन साल पहले निजी शौचालय बनाने के लिए आवेदन दिया था। लेकिन उस पर अभी तक कोई जवाब नहीं आया है और किसी ने इलाके का दौरा भी नहीं किया है।

सरकार ने शौचालय बनाने के लिए बहुत सारा खर्चा किया और "गंदगी को भगाना है, शौचालय जाना है" का नारा दिया लेकिन खुद प्रधानमंत्री के संसदीय क्षेत्र में शौचालय नहीं है और महिलाओं को शौच के लिए खुले मैदान या रेल के पटरी पर जाना पड़ता है।

नक्की घाट में लोगों ने बताया की लॉकडाउन के समय इलाके में नाले से निकाशी से जुड़ी कई समस्याएँ थी। स्थानीय लोगों के गुहार लगाने के बाद भी किसी ने सुध नहीं ली। उदाहरण के तौर पर हम नक्की घाट में एक बड़ी खुली नाली का जिक्र कर सकते हैं। स्थानीय लोगों ने नगर निगम और प्रशासन से नाली को ढकने की मांग की, लेकिन कोई कार्यवाही नहीं की गई। इस खुली नाली की वजह से लोगों में फैलने वाली बीमारियों का खतरा लगातार बना हुआ है।

हम तीन फोटो में लोहता में खुले में कूड़ा का ढेर और नक्की घाट में खुला नाला देख सकते हैं।

एक अख़बार में ख़बर छपी कि सुविधा सपन्न वर्ग के आवास सोसाइटी से कूड़ा उठाया जा रहा है लेकिन बनारस के अंदर की गलियों से कूड़ा नहीं हटाया जा रहा है। घर–घर से कूड़ा उठाने का काम पिछले 3 महीनों से चल रहा है लेकिन अभी भी इसके दायरे में पूरे क्षेत्र को नहीं लिया गया है। नगर निगम के अधिकारी मानते हैं की सभी घरों को इसके दायरे में नहीं लाया गया है। (स्त्रोत : अमर उजाला तारीख, 4.1. 2021)। इस हकीकत को हमनें अपने अध्ययन में भी देखा।

हमने अपने अध्ययन में सफाई कर्मचारियों को कोविड 19 सुरक्षा किट मिलते हुए नहीं पाया। सरकार के दिशा–निर्देश के अनुसार लॉकडाउन के समय सफाई कर्मचारियों को सुरक्षा किट देना अनिवार्य है।

पेय जल और स्वच्छता मंत्रालय की हाल की रिपोर्ट के अनुसार 2.10.2014 से 13 मार्च 2020 तक पूरे भारत में 102921674 निजी आवास लेट्रिन बनाया गया। उत्तर प्रदेश में यह संख्या 21390580 है।

(Source: *https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx-?PRID=1607162*)

लेकिन बनारस के नक्की घाट और आजमगढ़ के नयापुरा में अभी तक लोगों के घरों में लेट्रिन नहीं रहने के बारे में पता चला। सामुदायिक शौचालय का उपयोग करने के लिए पैसा देना पड़ता है, इसलिए लोग रेलवे पटरी और खुले मैदान में शौच करने जाते है। ये प्रधानमंत्री का अपना संसदीय क्षेत्र है।

सरकारी राहत योजनाएँ

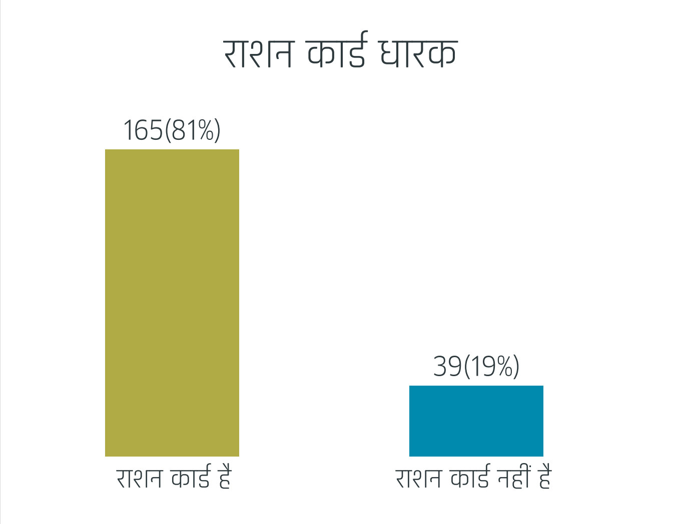

चित्र 29 : राशन कार्ड धारक

चित्र 29 के अनुसार 165 परिवार (81 प्रतिशत) के पास राशन कार्ड है और 39 परिवार (19 प्रतिशत) के पास कार्ड नहीं है। इसका मतलब इन 39 परिवारों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली का कोई लाभ नहीं मिला। इनमें 14 परिवारों ने राशन कार्ड के लिए आवेदन दिया है लेकिन उपयुक्त दस्तावेज या पर्याप्त दस्तावेज नहीं होने के कारण या धीमी चाल में चल रही प्रक्रिया के कारण उन्हें अभी तक कार्ड नहीं मिला है। 5 परिवारों ने उनके पास आधार कार्ड नहीं रहने के कारण राशन कार्ड नहीं मिलने की बात बताई।

कुछ लोगों ने एजेंटों को 200-300 रूपए देने के बावजूद राशन कार्ड नहीं मिलने की बात बताई। पूछने पर उन्हें निकट भविष्य में मिलने की अस्पष्ट प्रतिश्रुति मिली।

मुबारकपुर के मालती देवी गोंड आर्थिक रूप से पिछड़ा दलित परिवार से आती हैं और वे मिट्टी से बनी झोपड़ी में रहती हैं। उनके पति देख नहीं सकते और उनका 14 साल का एक बेटा है। उन्होंने उनके पास राशन कार्ड और जन धन खाता नहीं होने और उसके कारण लॉकडाउन के समय कोई भी सरकारी राहत नहीं मिलने की शिकायत की। उनके पास जमीन नहीं है और वे दूसरों के खेत में खेत मजदूरी करती हैं। यह मौसमी काम है। मालती देवी और उनके पति को कभी वृद्धावस्था पेंशन और विकलांगों की पेंशन नहीं मिली। उनकी कहानी इस बात की तसदीक करती है की सरकारी कल्याणकारी योजनाओं के प्रचार-प्रसार पर करोड़ों रूपया खर्चा करने के बावजूद इनका लाभ उन तक अपवाद स्वरूप ही पहुंचता है जिन्हें इसकी सबसे ज़्यादा ज़रूरत है।

रेवरी तालाब के तारिक खान ने बताया की उनके यहाँ समुदाय के कुछ लोगों के पास राशन कार्ड नहीं थे। लोगों ने मिलकर संबंधित अधिकारी को पत्र लिखा और उस पर समुदाय का दस्तखत लिया गया। इसके बाद लोगों को राशन मिलना शुरू हुआ।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली देश में गरीबी दूर करने की सबसे प्रमुख योजना है। इस योजना के तहत सरकार गरीबों को रियायती दर पर अनाज देती है। इसका मकसद गरीबों को रियायती दर पर अनाज देने के साथ साथ अनाज की बाज़ार कीमत को स्थिर रखना और बफर स्टॉक रखना है। 1990 तक इस व्यवस्था के द्वारा सभी लोगों को अनाज दिया जाता था।

राजकोषीय घाटे का बढ़ता बोझ, जिसका आंशिक कारण अनुदान रहा, जिसके कारण सार्वजनिक वितरण प्रणाली को 1997 में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली में तब्दील कर दिया गया। इस नई योजना में देश की आबादी को सरकार के गरीबी सीमारेखा के तहत दो हिस्सों में बांटा गया। पहली सूची में गरीबी सीमा रेखा से नीचे रहने वाले परिवार (बीपीएल) और दूसरी सूची में गरीबी सीमा रेखा से ऊपर (एपीएल) के परिवारों को रखा गया। बाद में सबसे ज़्यादा गरीब परिवारों को मदद देने के लिए अंतोदय अन्न योजना भी शुरू किया गया।

राशन कार्ड बनाने के लिए आधार कार्ड, पुराना राशन कार्ड, पहचान पत्र, पास बुक और फोटो की ज़रूरत है।

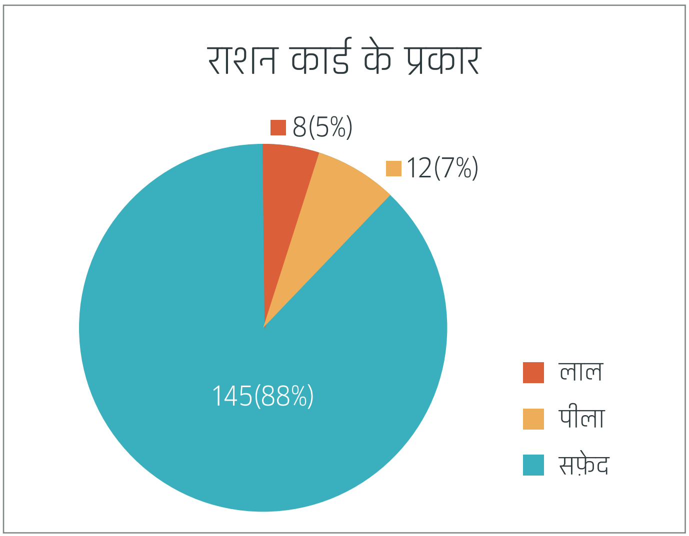

चित्र 30: राशन कार्डों के प्रकार

कुल 204 परिवारों मैं 165 परिवार (81 प्रतिशत) के पास राशन कार्ड थे। इनमे 145 परिवारों (88 प्रतिशत) को सफ़ेद राशन कार्ड जारी किया गया था। इन्हें हर महीना प्रति सदस्य को 5 किलो अनाज (ढाई किलो गेहूँ और ढाई किलो चावल) गेहूँ के लिए 2 रूपए प्रति किग्रा और चावल के लिए 3 रूपए प्रति किग्रा के हिसाब से राशन दिया जाता है।

8 परिवार (5 प्रतिशत) के पास लाल रंग का कार्ड था। ये सबसे गरीब परिवार थे जिन्हें अंतोदय योजना के तहत प्रति महीना 5 किलो अनाज निःशुल्क दिया जाता है।

12 परिवार (7 प्रतिशत) के पास पीला कार्ड है। ये लोग गरीबी सीमा रेखा के ऊपर हैं और इसलिए इन्हें राशन नहीं दिया जाता है।

अधिकांश लोगों के घर राशन दुकान से आधा किलोमीटर के दूरी पर थे। कुछ लोगों के लिए ये 2 किलोमीटर दूर था।

लॉकडाउन के समय अप्रैल महीने में सरकार ने एक योजना शुरू की। इसके तहत लोगों को महीने में दो बार राशन दिया जायेगा। पहली बार उन्हें गेहूँ, चावल और एक किलो चना मुफ्त दिया जायेगा और दूसरी बार उन्हें पुरानी दर से अनाज लेना होगा। ये योजना 8 महीने चलनी थी।

165 कार्ड धारक परिवारों में से 116 परिवार को महीने में दो बार राशन मिला। पहली बार उन्हें मुफ्त में दिया गया और महीने में दूसरी बार उन्हें 2 रूपए दर पर गेहूँ और 3 रूपए दर पर चावल खरीदना पड़ा।

इस योजना को लागू करने में भी कई खामियां पाई गईं। लोगों को सिर्फ पहले 5-6 महीने ही इस योजना का लाभ मिला जबकि इसे नवम्बर, 2020 तक चलना था।

आजमगढ़, गोरखपुर और मऊ में 47 परिवार (28 प्रतिशत) ऐसे थे जिन्हें राशन कार्ड नहीं होने के कारण लॉकडाउन के समय बाहर से राशन खरीदना पड़ा।

सभी जगहों पर एक मात्रा में अनाज का वितरण नहीं हुआ। कुछ जगहों पर लोगों को 1-2 किलो अनाज दिया गया तो कुछ जगहों पर 51 किलो अनाज दिया गया। राशन वितरण में समरूपता नहीं था। भ्रष्टाचार के आरोप भी लगे। कई जगहों पर लोगों ने राशन दुकानदार पर निर्धारित अनाज से कम देने और बचे हुए अनाज को पहले की दर पर बेचने का आरोप लगाया। इन कारणों से लॉकडाउन के समय सबसे ज़रूरतमंदों को सबसे कम राशन मिला।

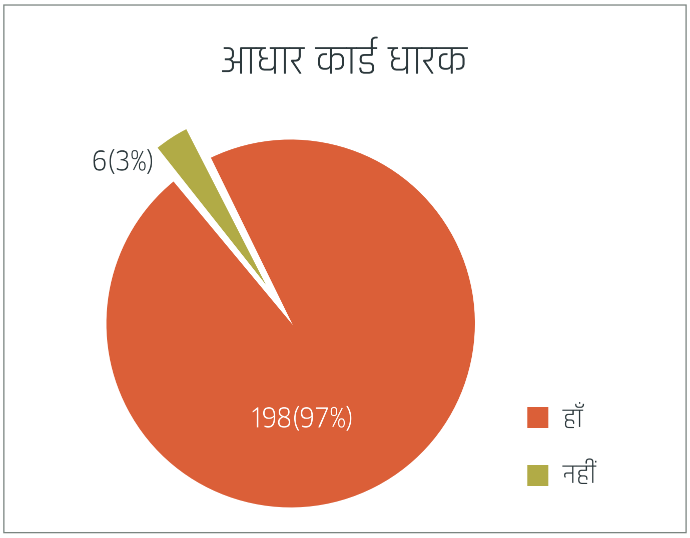

चित्र 31 : आधार कार्ड धारक

भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण (यूआइडीएआई) एक वैधानिक प्राधिकरण है। इसकी स्थापना भारत सरकार द्वारा 12 जुलाई, 2016 को इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिक मंत्रालय के मातहत की गई। इसे आधार अधिनियम 2016 (वित्तीय और अन्य सबसिडी, लाभ और सेवाओं का लक्षित) अधिनियम के प्रावधानों के तहत स्थापित किया गया। आधार अधिनियम कानून 2016 को आधार और अन्य कानून (संशोधन) अधिनियम, 2019 के द्वारा संशोधित किया गया।

यूआइडीएआइ की स्थापना भारत में रहने वाले सभी लोगों को एक विशिष्ट पहचान नंबर (आधार) देना है। इसमें नकली और फर्जी पहचान की संभावना को समाप्त करने की पर्याप्त क्षमता होनी चाहिए और

आसानी से कम खर्चे पर पहचान को सत्यापित किया जा सके।

पहला आधार नंबर 29 सितंबर, 2010 को महाराष्ट्र के नंदुरबार के रहने वाले को जारी किया गया। अब तक भारत में रहने वाले 124 करोड़ से ज़्यादा लोगों को आधार कार्ड जारी किया गया है।

आधार अब अनिवार्य दस्तावेज बन गया है। आप किसी सरकारी दफ्तर में जाते हैं तो सबसे पहले आप से आधार मांगा जाता है। हमारे सर्वे ने भी इस बात की पुष्टी की है। सर्वे में भाग लेने वालों में 198 लोगों (97 प्रतिशत) के पास आधार कार्ड है और सिर्फ 6 (3 प्रतिशत) लोगों के पास आधार कार्ड नहीं है। लोगों ने आधार कार्ड नहीं होने के कई कारण गिनाये। एक तो ऑफिस बंद हो जाना और दूसरा अधिकारियों द्वारा किसी न किसी कारण से आधार कार्ड नहीं देना।

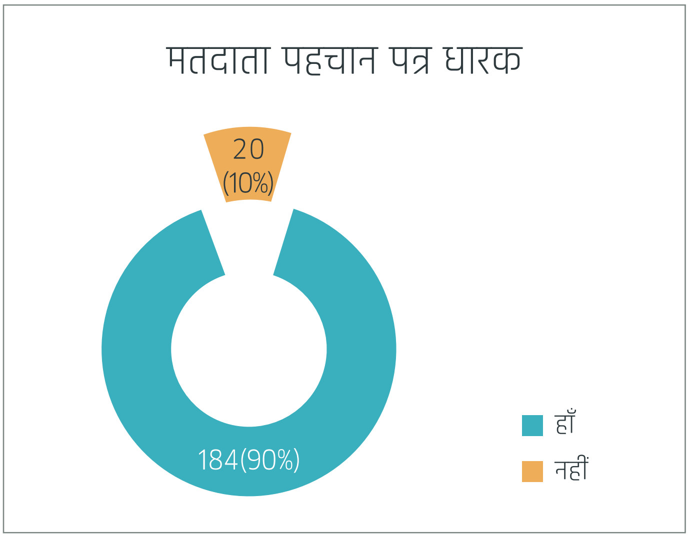

चित्र 32 : मतदाता पहचान पत्र धारक

भारत एक संवैधानिक लोकतंत्र है। यहाँ केंद्रीय और राज्य सरकारों का गठन संसदीय चुनाव के द्वारा होता है। नियमित, मुक्त और निष्पक्ष चुनाव सम्पन्न होना इस संसदीय लोकतंत्र का मूल तत्व है। इन चुनावों से सरकार का स्वरूप निर्धारित होता है।

भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था सार्वजनिक बालिग मताधिकार पर आश्रित है, इसका मतलब 18 साल (पहले ये 21 साल था) से ज़्यादा उम्र के सभी लोग चुनाव में मतदान कर सकते हैं। सभी जाति, धर्म, आस्था और लिंग के लोग मतदान कर सकते है। दिमागी रूप से बीमार और कुछ अपराधों में दोषी करार दिये लोगों को मतदान नहीं करने दिया जाता है।

एक लोकतांत्रिक देश में वोट बहुत महत्वपूर्ण है और इसे नागरिक को जन्म से मिलने वाला बुनियादी अधिकार समझा जाता है। आंकड़े के अनुसार 184 (90 प्रतिशत) लोगों के पास वोटर पहचान पत्र था। 20 लोगों (10 प्रतिशत) के पास वोटर कार्ड नहीं था। इनसे जब वोटर पहचान पत्र नहीं रहने के कारण के बारे में पूछा गया तो कुछ लोगों ने फॉर्म भरने के बारे में कहा तो कुछ लोगों ने बताया की कुछ तकनीकी कारणों से उनका आवेदन कुछ गलतियों या उपयुक्त दस्तावेज नहीं रहने के कारण खारिज कर दिया गया है। इससे कुछ लोगों के लापरवाह होने या उपयुक्त ज़रूरी दस्तावेज के बारे में जानकारी नहीं रहने का पता चलता है।

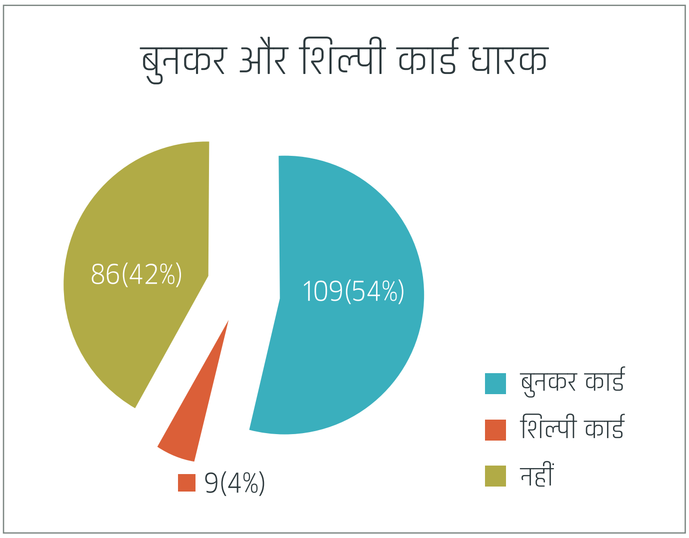

चित्र 33 : बुनकर और शिल्पी कार्ड धारक

राज्य सरकार की एक योजना के तहत सर्जनात्मक और उत्पादक गतिविधि जैसे मिट्टी के कलाकृति, चित्रकारी, नक्सा बनाने, फ़ैशन डिज़ाइनिंग, बुनाई, एंब्रोईडरी जैसे कामों में लगे शिल्पी और कारीगरों को आर्थिक मदद तथा कर्ज देने के लिए जारी किया गया था। ये सभी काम सूक्ष्म उद्योग में आते हैं। इन्हें सस्ते ब्याज पर कर्जा दिया गया था।

बुनाई उद्योग में बुनकर कार्ड बुनाई करने वालों को और शिल्पी कार्ड जरदोजी काम करने वालों को दिया गया था।

कुल 204 लोगों में 109 (54 प्रतिशत) लोगों के पास बुनकर कार्ड और 9 (4 प्रतिशत) लोगों के पास शिल्पी कार्ड था। 86 (42 प्रतिशत) लोगों के पास इन दोनों में से कोई भी कार्ड नहीं है।

बनारस के सरायमोहाना के रहने वाले दीपक कुमार गौड़ और बाबूलाल राजभर कहते हैं “काँग्रेस सरकार में हमें बुनकर कार्ड पर 1000 रूपए मिलते थे। लेकिन जब से बीजेपी सरकार आई है तब से हमें बैंक खाते में एक नया पैसा नहीं आया है”।

हमने पाया की पिछली सरकारों से इतर इस सरकार में उत्तर प्रदेश सरकार ने पहली जनवरी, 2020 को इस योजना की किसी तरह की मांग नहीं रहने की बात करके शिल्पी कार्ड योजना को बंद कर दिया।

लेकिन जमीनी हकीकत कुछ और है। लोगों के पास शिल्पी और बुनकर कार्ड हैं लेकिन उन्हें इसका कोई लाभ नहीं मिल रहा है। योजना की मांग है और बुनकर तथा जरदोजी कारीगरों को मदद की ज़रूरत है।

(Ref: https://nsfdc.nic.in/hi/shilpi-samriddhi-yojana)

किसी भी आदमी को इस कार्ड पर कोई लाभ नहीं मिला है।

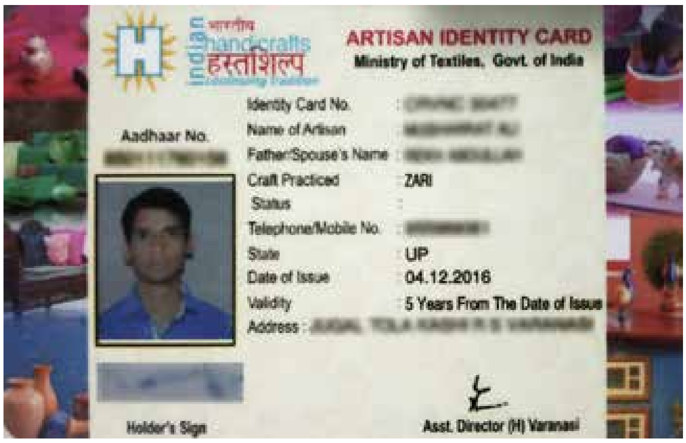

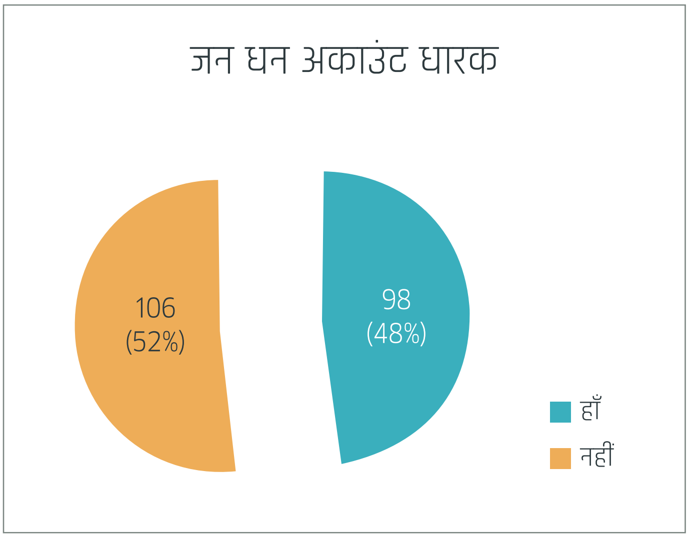

Figure 34 : Jan Dhan Account holders

प्रधानमंत्री जन धन योजना वित्तीय समावेश के लिए राष्ट्रीय अभियान है। इसका उद्देश्य लोगों को सुलभ और सस्ते में मूल बचत और जमा खाता, प्रेषित रूपया, कर्जा, बीमा, पेंशन आदि तक पहुँच को सुनिश्चित करना है। इस योजना के तहत कोई व्यक्ति जिसका अन्य किसी बैंक में खाता नहीं है, मूल बचत और जमा खाता किसी भी बैंक या बैंक मित्र में खोल सकता है।

प्रधानमंत्री जन धन योजना खाता का लाभ

- बैंक में खाता नहीं रहने वाले एक मूल बचत खाता खोल सकते हैं।
- इस खाते में कोई न्यूनतम राशि रखने की ज़रूरत नहीं है।
- प्रधानमंत्री जन धन योजना के खाता धारक को रूपे डेबिट कार्ड दिया जायेगा।

रूपे कार्ड में एक लाख रूपया तक (अगस्त 28, 2018 के बाद खाता खोलने वालों के लिए इस राशि को बढ़ाकर 2 लाख कर दिया गया है) की दुर्घटना बीमा राशि का प्रावधान है।

- प्रधानमंत्री जन धन खाते में जमा राशि पर ब्याज मिलेगा।
- योग्य खाता धारकों के लिए 10000 रूपए तक की ओवर ड्राफ्ट की सुविधा है।
- प्रधानमंत्री जन धन योजना खाता धारक प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण, प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना, प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना, अटल पेंशन योजना और मुद्रा योजना का लाभ उठाने के पात्र हैं।

लॉकडाउन के समय जन धन योजना के तहत मिलने वाली आर्थिक मदद के लिए लोगों का बैंकों के आगे कतार में खड़े होने की सूचना मिली। उनके खाते में सरकार ने पैसा भेजा है या नहीं इसे जानने के लिए लोग कतार में खड़े थे। जिन लोगों के पास यह खाता नहीं था, वे खाता खोलने के फॉर्म लेने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन आरोप है की बैंक वाले लोगों को फॉर्म नहीं दे रहे थे। बैंकों के बाहर लंबी कतार थी और किसी तरह की सामाजिक दूरी नहीं बनाई गई। लोगों के कमाई का रास्ता पूरी तरह बंद हो चुका था, इसलिए उनके पास सरकार के ऊपर आश्रित होने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।

ऊपर के आंकड़ों से पता चलता है की सिर्फ 98 लोगों (48 प्रतिशत) के पास जन धन खाता था और 106 लोगों (52 प्रतिशत) के पास ये खाता नहीं था। ये आरोप लगा की बैंक सिर्फ प्रभावशाली लोगों को फॉर्म दे रहा था न की उनको जिन्हें जरूरत थी।

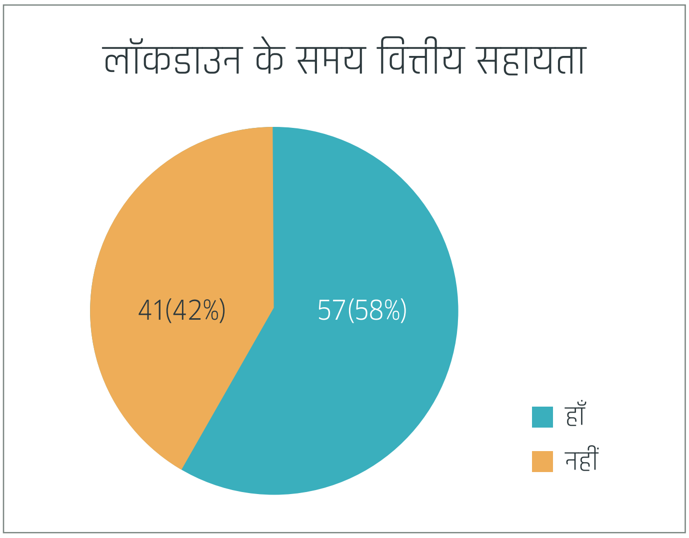

चित्र 35 : लॉकडाउन के समय आर्थिक मदद

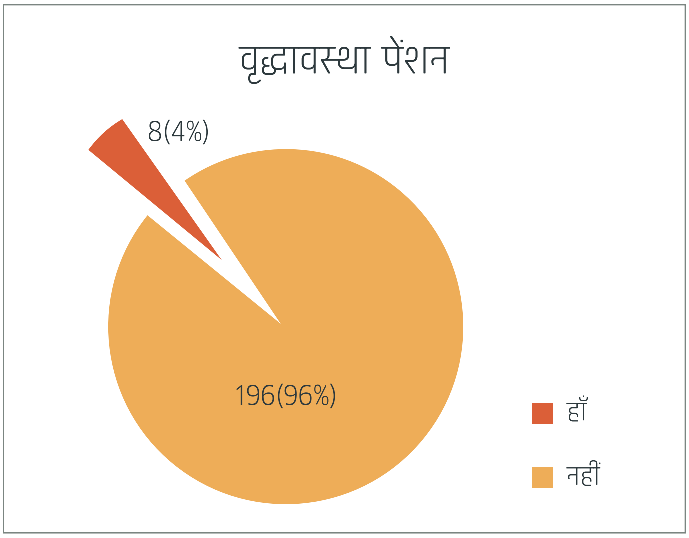

चित्र 36 : वृद्धावस्था पेन्सन

राहत योजना के तहत सरकार ने जन धन खाते में तीन बार 500 रूपए डालने की घोषणा की थी। चित्र 34 के अनुसार 98 लोगों के पास (48 प्रतिशत) जन धन खाता है और 106 लोगों (52 प्रतिशत) के पास यह खाता नहीं है। जन धन खाता धारकों में 57 लोगों (58 प्रतिशत) को सरकार से आर्थिक मदद मिली। इनमें 50 लोगों को तीन बार में 1500 रूपए मिले, 9 लोगों को 1000 रूपए (2 बार 500 रूपए करके) और 2 लोगों को सिर्फ एक बार 500 रूपए मिले।

जन धन खाता होने के बावजूद 41 (42 प्रतिशत) लोगों को सरकार से कोई पैसे की मदद नहीं मिली। पुराना गोरखपुर के रहने वालों को कोई पैसा नहीं मिला।

लोहता, बनारस के हारून अहमद के परिवार में पाँच सदस्य हैं। वे कहते हैं "मैंने लॉकडाउन के समय जन धन फॉर्म भरा और मैं सरकार से 1000 रूपए की आर्थिक मदद की उम्मीद कर रहा था, लेकिन मुझे कुछ नहीं मिला"। उन्होंने डरावनी आवाज़ में आगे कहा "मैं अपने परिवार की देखभाल करने के लिए कोई दूसरा काम देख रहा हूँ। लेकिन अगर मुझे कोई काम नहीं मिलेगा तो मेरे पास आत्महत्या करने के अलावा कोई रास्ता नहीं रहेगा"।

बुजुर्ग नागरिकों के लिए सरकार की पेंशन योजना उन्हें आर्थिक सुरक्षा देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है और साथ में इससे समाज के कुछ अहम क्षेत्र में आर्थिक विकास की शुरुआत होती है। भारत में इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना इसी तरह की योजना है। यह योजना 2007 में ग्रामीण विकास मंत्रालय ने शुरू की थी और इसे नेशनल सोशल एसिसटॅन्स प्रोग्राम के नाम से जाना जाता है। वरिष्ठ नागरिकों, विधवा और विकलांगों को पेंशन देकर लाभार्थियों को सामाजिक सुरक्षा मुहैया कराना इस योजना का मूल मकसद है।

चित्र 36 के आंकड़े के अनुसार 204 परिवारों में 196 (96 प्रतिशत) परिवारों में पेंशन लेने वाला कोई पात्र नहीं है या होने पर भी पंजीकरण नहीं किया है। सिर्फ 8 परिवारों में पेंशन पाने वाले हैं। इनमें 4 लोगों को लॉकडाउन के समय 1500 रूपए पेंशन मिली थी।

चौहट्टा के आफ़ताव कहते हैं की उन्होंने खाता खोला और माँ के पेंशन के लिए आवेदन किया लेकिन उन्हें कुछ नहीं मिला।

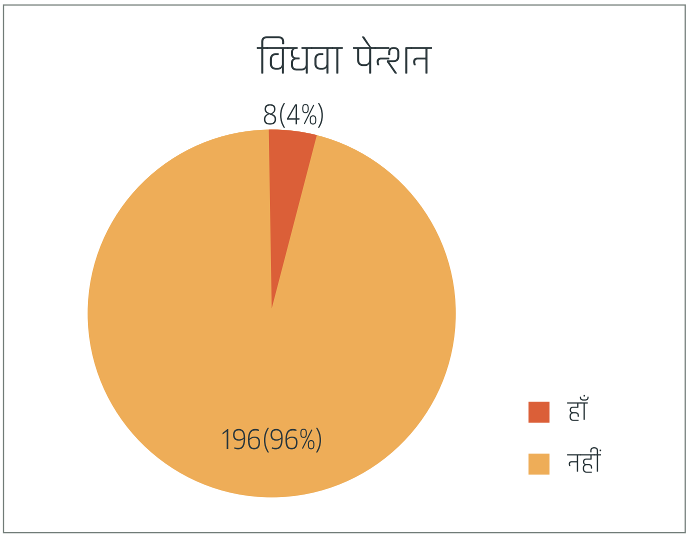

Figure 37: Widow Pensioner

विधवा पेंशन लेने वाले इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन के भी हकदार हैं। चित्र 37 में 8 परिवार (4 प्रतिशत) में विधवा थीं और 196 (96 प्रतिशत) परिवारों में कोई विधवा नहीं थी। इन 8 विधवाओं में लॉकडाउन के समय सिर्फ 4 को पेंशन मिला। उन्हें 3000, 1500, और 1000 रूपए पेंशन मिली। एक अन्य महिला को पेंशन मिली लेकिन उसने रकम बताने से इनकार किया।

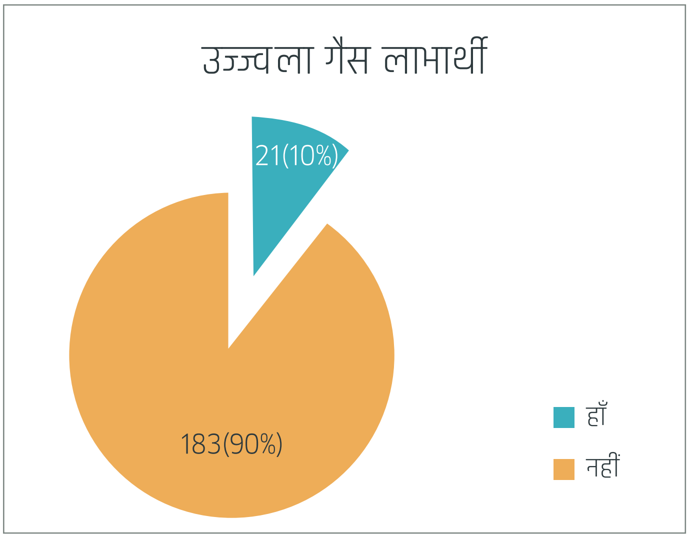

Figure 38: Ujjwala gas beneficiary

समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा 1 मई, 2016 को “स्वच्छ ईंधन, बेहतर जीवन” के नारे के साथ प्रधानमंत्री उज्जवला योजना की शुरूआत हुई। पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय इस योजना को लागू कर रही है।

यह योजना धुआँ मुक्त ग्रामीण भारत की बात करती है और इसका लक्ष्य 5 करोड़ परिवारों को मदद पहुंचाना है, खास कर गरीबी सीमा रेखा से नीचे रहने वाली महिलाओं को मुफ्त में गैस कनैक्शन देना। साथ ही रियायती दर पर पूरे देश को कनैक्शन देना (इसके 2019 तक पूरा हो जाने का बात कही गई थी)। इस योजना से एलपीजी का उपयोग बढ़ेगा जिससे स्वास्थ्य संबंधी समस्या, वायु प्रदूषण और जंगल की कटाई कम होगी।

मौजूदा सरकार ने इस योजना का बहुत प्रचार किया। सभी जगहों पर लोगों को इस योजना का बैनर दिखता है और टेलीविजन पर इसके विज्ञापन देखे जा सकते हैं। लेकिन हमारे सर्वे के आंकड़े में सिर्फ 21 महिलाएं (10 प्रतिशत) इस योजना के तहत पंजीकृत हैं। शेष 183

महिलाओं (90 प्रतिशत) का इस योजना में पंजीकरण भी नहीं हुआ है। कई औरतें पिछले एक-दो साल से उज्जवला गैस पाने की कोशिश कर रही हैं और 4-5 बार फॉर्म भर चुकी हैं, लेकिन अभी तक गैस नहीं मिली है।

उज्जवला योजना के तहत पंजीकृत 10 प्रतिशत महिलाओं में से 10 महिलाओं को लॉकडाउन के समय गैस मिली। अन्य पंजीकृत 11 महिलाएं गरीबी सीमा रेखा से नीचे हैं, उन्हें गैस सिलेंडर नहीं मिला। सरकार की योजना के अनुसार 2019 तक पूरे देश में सभी के पास गैस कनैक्शन हो जाना चाहिए था। लेकिन हम जानते हैं की कितने परिवार मिट्टी के चूल्हे पर खाना बनाते हैं। लोगों ने उज्जवला गैस के लिए आवेदन किया है फिर भी उन्हें नहीं मिला। यह बनारस के नक्की घाट में देखा गया जो प्रधानमंत्री की संसदीय क्षेत्र है।

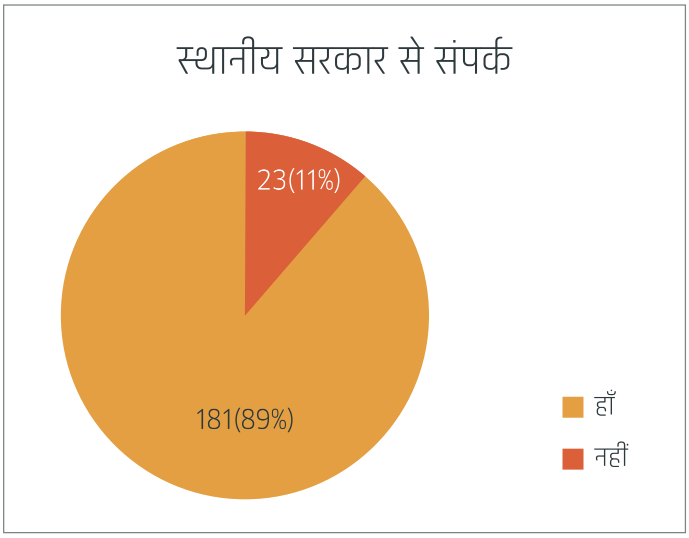

चित्र 39: स्थानीय सरकार से संपर्क

चित्र के अनुसार सर्वे में हिस्सा लेने वालों में 23 (11 प्रतिशत) लोगों ने राशन, जन-धन योजना के तहत आर्थिक मदद, ग़लत या बढ़ाया हुआ बिजली बिल या नाला निकाशी से जुड़ी समस्याएँ और राहत के लिए स्थानीय और राज्य सरकार से संपर्क किया। आम तौर पर लोग इन मुद्दों पर स्थानीय और राज्य सरकार के रुख से संतुष्ट नहीं हुए।

हमारे सर्वे के 181 (89 प्रतिशत) लोगों ने स्थानीय सरकार से संपर्क नहीं किया।

लल्लापुरा, बनारस के रुकसाना ने बताया की घर में खाना नहीं रहने के कारण उन्हें कोरोना बीमारी की जगह भूख से मर जाने का डर ज़्यादा लग रहा था। वे स्थानीय सरकार से मदद नहीं मांग पाये क्योंकि सभी लोग बीमारी फैलने के लिए मुसलमानों को ज़िम्मेदार ठहरा रहे थे। प्रतिक्रिया के डर से बनारस के कोयला बाज़ार के खुर्शीद आलम और गुलाब ने कहा "हम ज़्यादा नहीं बोल सकते, लेकिन हाँ हमें सरकार से कोई मदद नहीं मिली है। उनकी तरफ से बहुत ज़्यादा परेशान किया गया"

लॉकडाउन के दौरान भेदभाव

फ़ैक्ट फ़ाइंडिंग के दौरान हमें धार्मिक भेदभाव का शिकार होने वाले लोग मिले। उन्हें सांप्रदायिक धब्बे, कल्याणकारी योजनाओं के लाभ से वंचित करने से लेकर कोरोना वाइरस के फैलाने तक का ज़िम्मेदार ठहराना शामिल है। नीचे कुछ उदाहरण दिए गए हैं :

- आरी कारीगर आफ़ताब ने कहा "काम की खोज करने के लिए मैं दूसरे शहर गया था और दूसरे दिन पहली ट्रेन से मैं वापस आ गया। ट्रेन से उतरने के बाद पुलिस ने मेरा नाम पूछा और मुझे कोरेंटाइन कर दिया जबकि मेरे साथ के हिंदुओं को जाने दिया गया"। आफ़ताब ने आगे और कहा "हमें रात 9 बजे तक दुकान बंद करने को कहा जाता है लेकिन हिंदुओं को इस समय के बाद भी दुकान खोले रखने दिया जाता है"।

- लॉकडाउन के बाद सरकार एक के बाद एक राहत योजनाओं की घोषणा कर रही थी। इसी तरह की एक मोदी राहत किट थी जिसमें गेहूँ का आटा, चावल, दाल, तेल, चीनी, चाय पत्ती, नमक आदि सामान था। इस किट को बनारस के शिवाला, रेवरी तालाब और मदनपुरा में बांटा गया। इन इलाकों में भारी संख्या में बीजेपी के वोटर हैं।

- रजौद्दीन (बदला हुआ नाम) ने बताया "लॉकडाउन के समय मोदी किट का वितरण हो रहा था। इसलिए मैं और मेरा दोस्त कृष्णा (बदला हुआ नाम) किट लेने गए। उन्होंने हम दोनों को नाम पूछा लेकिन सिर्फ कृष्णा को किट दिया"। रजौद्दीन आगे कहते हैं "उन लोगों ने खुले तौर पर कहा की ये किट हिंदुओं के लिए है, मुसलमानों के लिए नहीं है। इस मुश्किल समय में भी लोग हिंदू और मुसलमानों में नफ़रत फैला रहे हैं।

- राहत वितरण में लोगों को धार्मिक और जातीय भेदभाव का सामना करना पड़ा। कुछ जगहों पर लोगों पर लाठी चार्ज किया गया। कुछ लोगों ने बताया की राहत वितरण के समय वहाँ मौजूद सरकारी अधिकारियों ने लोगों से कहा की यह सिर्फ हिंदुओं के लिए है। अधिकारियों ने लोगों से कहा की राहत के लिए वे उनके पास जाएँ जिन्हें उन लोगों ने वोट दिया है।

- आजमगढ़ के पतिराम प्रजापति के परिवार में सात सदस्य है। लॉकडाउन के पहले वे किसी और के पाँवर लूम में काम करते थे और महीना में 1600 रूपया कमाते थे। अब उनके पास कोई काम नहीं है। उनके पास जन धन खाता है और इस खाते में सरकार की ओर से कुछ पैसा डाला गया। पतिराम ने बताया की वे राहत किट लेने के लिए गये थे, वहाँ बहुत ज़्यादा भीड़ था। पुलिस ने लाठी चार्ज किया। उन्हें लाठी की मार पड़ी। वे खाली हाथ वापस आए। जाति के सवाल को दिमाग में रखने से स्थिति स्पष्ट हो जाती है। प्रजापति उन 17 अति पिछड़े वर्ग में शामिल है जिन्हें उत्तर प्रदेश की समाजवादी पार्टी की सरकार ने 2016 में अनुसूचित जाति का दर्जा देने का प्रस्ताव दिया। इस प्रस्ताव पर वोट बैंक की राजनीति से प्रेरित होने का आरोप लगा। अदालत ने प्रस्ताव को खारिज कर दिया। समाजवादी पार्टी के प्रस्ताव को इससे पहले केंद्र सरकार खारिज कर चुका था। पतिराम की कहानी दिखाता है की किस तरह से सामाजिक–आर्थिक रूप से हाशिये पर रहने वाला समुदाय जाति के आधार पर प्रताड़्ना और भेदभाव का शिकार होता है।

- बनारस के जलालीपुरा के महबूब आलम आरोप लगाते हैं की ज़रूरतमंदों को राशन नहीं दिया गया बल्कि धर्म विशेष के लोगों को राशन मिला।

- बनारस लोहता के शमशाद अहमद ने इलाके में पानी निकासी की समस्या और गंदे पानी को लेकर पुलिस और सरपंच से संपर्क किया। इन समस्याओं के कारण लोग बीमार हो रहे थे। लेकिन किसी ने इसकी सुध नहीं ली। महिलाओं ने राशन की मांग करते हुए सरपंच के घर पर पूरा एक दिन धरना दिया। सरपंच ने कहा "तुम लोगों को जितना भी मिलता है उतना ही मांगते हो। यहाँ से चले जाओ, तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा"।

- बनारस के बड़ीबाज़ार के मोहमद सलीम और नक्की घाट के नसीरुद्दीन, जैनूलआबेदिन,कौसर जहाँ, गुलाम नवी और निसार अहमद ने बताया की साम्प्रदायिक तनाव के कारण माहोल ख़राब हो गया है। माहोल इतना जहरीला हो गया है की उन्होंने सरकार से संपर्क भी नहीं किया क्योंकि राशन वितरण में धर्म के आधार पर भेदभाव किया जा रहा है।

- बड़ी बाज़ार के इकबाल अहमद ने अपना अनुभव साझा किया। वे सामान लेने के लिए हिंदू दुकानदार के पास गये तो वहाँ लोगों ने उन्हें देखकर नफ़रती बातें कही "कोरोना आ गया, इसे कुछ मत दो, कोरोना आ जायेगा"।

- मोहम्मद तालिब रेवरी तालाब के रहने वाले हैं। वह जब आटा लेने के लिए दुकान पर खरीदने गये तो दुकानदार ने उन्हें आटा देने से मना कर दिया। दुकानदार ने कहा "तुम मुसलमान हो, हम तुम्हें आटा नहीं देंगे"। उन्हें देखकर लोगों ने "मियां आ गया" कहकर प्रताड़ित किया गया। "मियां" सम्मान सूचक शब्द है लेकिन अब ये सांप्रदायिक धब्बा बन गया है। तालिब याद करते हैं "लोगों ने कहा कोरोना आ गया, हम तुम्हें नहीं देंगे, भागो"। तालिब ने उनसे पूछा "आप लोग ऐसा क्यों कह रहे हैं? मुझे आटा दीजिये। हम सालों से यहाँ रहते आए हैं। तब कोरोना नहीं था, अब कोरोना आ गया"? आरोप है कि इन लोगों ने मुस्लिम मोहल्लों से आने वालों को रोकने के लिए रास्ते को टीन से रोक दिया था।

  "आज हमें सब्जी खरीदने या कहीं और जाना है तो भगा दिये जाने के डर से ज़्यादा पीटे जाने/ मार दिये जाने का डर होता है। अब बाहर जाना मुश्किल है, हम बाहर जाने से बचते हैं। मजा करने या मनोरंजन के लिए हम कहीं नहीं जाते। हम सोचते हैं की हालत ठीक होने पर हम बाहर जायेंगे। अब माहोल ठीक होने में एक साल लगेंगे"– तालीब अफसोस जताते है।

- वारिसा बानों कहती हैं की लॉकडाउन के समय भी बजरडीहा के हिंदू और मुसलमान समुदाय सद्भाव और शांति से रहे। लेकिन मोहल्ले से बाहर सड़क पर मुसलमानों को भेदभाव का सामना करना पड़ा। ये ख़बर आई की बजरडीहा में तबलिगी–जमात के लोग छुपे हैं। हिंदू दुकानदार मुसलमानों को सामान देने से मना कर देता है। उसके बाद कोई डॉक्टर सक्सेना कथित तौर पर बजरडीहा के मरीजों को देखने से मना कर देते हैं। डॉक्टर सक्सेना के क्लीनिक के बाहर कैमरा लगा है। ये आरोप लगा की डॉक्टर ने अपने कर्मचारियों से आने वाले मरीजों के बारे में पता करने और अगर वे बजरडीहा से हैं तो उन्हें अंदर नहीं आने का आदेश दे रखे थे।

- रेवरी तालाब के नसीम अहमद अंसारी ने बताया की जब वो राशन लेने के लिए गये तो राशन देने वालों ने उनसे उनकी राजनीतिक संबंध, झुकाव या स्पस्ट रूप से उन्होंने किसे वोट दिया था, के बारे में जानना चाहा। यह सिर्फ निजता का उल्लंघन का बड़ा मामला नहीं है बल्कि सरकार में बैठे राजनीतिक पार्टी को वोट नहीं देने वालों पर भेदभाव करने का व्यवस्थित ज़रिया है। नसीम को अधिकारियों से शिकायत करने का कोई मतलब नहीं दिखा।

- रेवरी तालाब के वसीम अख्तर ने बताया की कुछ लोग पुलिस थाने के सामने खाना बाँट रहे थे लेकिन वे किसी को खाना ले जाने नहीं दे रहे थे। वे लोग, सबको वहीं बैठ कर खाने के लिए ज़ोर दे रहे थे।

- रेवरी तालाब के आसिफ जमाल ने बताया कि इलाके के नगर निगम ने राहत किट बांटने के लिए सभी लोगों का नाम लिया। इस सूची को उच्च अधिकारियों के पास भेजा गया। इलाके के सिर्फ 3 मुसलमानों को राहत किट मिला, बाकी लोगों को कुछ भी नहीं मिला।

- भेदभाव के बारे में बताते हुए खुर्शीद ने आरोप लगया "हिंदुओं को ज़्यादा दिया गया। उन्हें 75 किलो अनाज मिला जबकि मुसलमानों को सिर्फ 5 किलो। हममें से कुछ लोगों को ही जनधन योजना से पैसा मिला"। वे आगे कहते हैं "हम लोगों ने भी मास्क पहनने और सामाजिक दूरी रखने और भीड़ इकट्ठा नहीं करने के आदेश का पालन किया। लेकिन सरकार ने हमारे प्रति कोई रहम नहीं दिखाई"।

- लल्लापुरा, बनारस से वसीम ने बताया की राशन वितरण स्पष्ट रूप से धर्म का आधार पर हो रहा है।

- बनारस, लोहता के निवासी दिलशाद खान ने बताया की दुकानदारों ने उधार पर सामान देने से मना कर दिया। उनके अनुसार हिंदू और मुसलमानों के बीच पहले अच्छे रिश्ते थे। लेकिन एनआरसी विवाद के बाद लोग मुसलमानों को देश से बाहर निकालने के बात करने लगे। उन्होंने आगे कहा कि ऐसा नहीं हो पाएगा क्योंकि दोनों समुदाय एक दूसरे से तानेबाने की तरह निर्भर हैं।

लॉकडाउन का महिलाओं पर प्रभाव

- बनारस के बड़ी बाज़ार की अजीजुल निशा ने बताया कि घर में खाने को कुछ नहीं रहने पर पुरुष गुस्सा हो जाते थे और इसके कारण कभी–कभी आपस में झगड़ा हो जाता था।

- नक्की घाट की मेहरुन निसा और चिंतामणि घरेलू हिंसा की शिकार हैं। लॉकडाउन के समय काम न होने के कारण उनके पति हमेशा घर पर रहते थे। पुरुष अपनी हताशा पत्नियों पर उतारते थे और उनको गाली–गलौज और कभी–कभी शारीरिक हिंसा या

मारपीट भी करते हैं।

- लोहता की एक महिला लॉकडाउन के समय घर में बहुत कम खाना और कभी-कभी बिलकुल खाना नहीं रहने को लेकर परेशान रहती थी। वह अपने परिवार के लोगों को भूखा नहीं देख सकती थी। इस कारण से पति और पत्नी के बीच बहस और कभी-कभी लड़ाई हो जाती थी।
- बड़ी बाज़ार की 46 साल के उम्र की अफ़जाजुल निसा ने आठवीं तक की पढ़ाई की हैं। उनकी 14 साल की बेटी दसवीं कक्षा में पढ़ती थी। पाँच सदस्य के परिवार की आर्थिक तंगी के कारण बेटी को पढ़ाई छोड़नी पड़ी और वह करघा पर काम करने लगी। उनका 9 साल का बेटा भी करघा पर काम करता है। वह खुद साड़ी की कटिंग और फिनिशिंग का काम करती थी। एक दिन में वह 5 साड़ी पर काम करती थी और इसके लिए उन्हें 40-50 रूपया मिलते थे। लेकिन ये लॉकडाउन होने के पहले की बात है। आज उन्हें इतना काम भी नहीं मिलता क्योंकि काम नहीं है।

- बनारस के सराइया में बुनाई के काम से जुड़ी महिलाओं की एक बैठक 25 दिसंबर, 2020 को आयोजित की गयी थी। लेकिन मीटिंग शुरू होने के बाद 12-16 साल की लड़कियां भी उसमें शामिल हुईं। उन्हें जब मीटिंग में आने के कारण के बारे में पूछा गया तो लड़कियों ने कहा कि लॉकडाउन के पहले वे भी बुनाई का काम करती थी लेकिन आज उनके पास काम नहीं है। महिलाओं ने अपनी गरीबी के बारे में बताया और खाने व भूख की समस्या पर बात की जो कि अभी तक बरकरार। लड़कियों ने बताया की आज भी एक वक्त का खाना मिलना उनके लिए बड़े नसीब की बात है। 12-16 साल के उम्र की मुस्कान, रानी, चाँदनी और शानो सभी रोने लगीं।
- रुकसाना फातिमा मऊ जिला की घोसी गाँव की रहने वाली निरक्षर महिला हैं। वह अपने पावर लूम पर कफ़न बुनती हैं। उनके परिवार में 6 सदस्य हैं, 4 बच्चे और पति-पत्नी। रुकसाना और उनके पति दोनों मिलकर दिन में 40 मीटर कपड़ा बुनते थे। उन्हें 10 मीटर कपड़ा बुनने पर 30 रूपया मिलता था। दोनों मिलकर इस हिसाब से दिन में 120 रूपया कमाते थे। अब लॉकडाउन हटा लिया गया है लेकिन इनके पास अभी भी कोई काम नहीं है क्योंकि कारोबार नहीं चल रहा है। उन्होंने लॉकडाउन के समय खाने और दवाई के लिए रिशतेदारों और दोस्तों से 50 हजार रूपया कर्ज लिया है। अब रुकसाना के ऊपर 50 हज़ार रूपए का कर्ज है और वह परिवार और भविष्य को लेकर बेहद चिंतित हैं।
- आजमगढ़ के मुबारकपुर में हमनें तीन लड़कियों को एक साथ हथकरघा पर लहंगा बुनते हुए देखा। इन तीनों की उम्र 24 साल, 20 साल और 16 साल थी। हम लोगों ने जैसे ही इन तीनों से बात करना शुरू किया, बड़ी उम्र की दोनों लड़कियाँ घर के अंदर चली गयी। सबसे छोटी उम्र की महजबीं (बदला हुआ नाम) हम लोगों के साथ बैठी। उसने बताया कि उसने

आठवीं कक्षा तक मदरसा में पढ़ाई कि है, उसके बाद उसे पढ़ाई छोड़नी पड़ी। घर के काम में हाथ बटाना पड़ा और बड़ी हो जाने के कारण उसे घर के अंदर रहना पड़ा। हम लोगों के साथ बात करते हुए वह खुश दिख रही थी। उसने अपने शौक के बारे में हमें बताया और हमसे सवाल पूछा। कुछ देर बाद बड़ी बहन आई और उसने उसे थप्पड़ मारा। बड़ी बहन ने कहा "घर में चलों। क्यों बात कर रही हो? ये लोग बाहरी हैं, हम लोगों कों बाहरी लोगों से बात करना मना है। अंदर चलो वरना मैं तुम्हारी शिकायत अम्मी से करूंगी"।

- मैंने बड़ी बहन से पूछा "तुमने उसे थप्पड़ क्यों मारा? वो तो मासूम है, उसे बातचीत करना अच्छा लग रहा था। वो तो बस अपनी पढ़ाई के बारे में बता रही थी"। इसके बाद बड़ी बहन और ज़्यादा गुस्सा हो गयी और वो महजबीं को जबरदस्ती घर के अंदर ले कर चली गयी। इससे मुबारकपुर में महिलाओं की "जहालत" का पता चलता है। वहाँ महिलाएँ फोटो नहीं खिंचा सकती, यहाँ तक की छोटी लड़कियों को भी इसकी इज़ाजत नहीं दी जाती। मुबारकपुर की मुसलमान महिलाएँ घर के अंदर रहती हैं, करघा पर काम करती हैं और घर के दूसरे काम करती हैं लेकिन वे बाहर नहीं जा सकती। महजबीं ने बताया की औरतें अपने रिशतेदारों के शादी में भी विरले ही जाती हैं। किसी

भी घर में टेलिविजन नहीं है। पढ़ाई के नाम पर दीनी तालीम है और बुर्के में रहना आम बात है। हमनें 5-6 साल की छोटी बच्चियों को हिजाब में देखा है। वे कहती हैं कि "बड़ी होकर हम बुर्के में रहेंगे। बुर्के में नहीं रहना गुनाह होता है"। वे बाहरी, यहाँ तक कि महिलाओं को भी शक के निगाह से देखते हैं।

- बनारस, सरइया की रहने वाली रेखा सूरी कहती है की लॉकडाउन के समय काम नहीं रहने के तनाव में पति ने शराब पीना शुरू कर दिया और उनके साथ मारपीट करते हैं।

- बनारस, सरइया की रहने वाली रेखा सूरी कहती है की लॉकडाउन के समय काम नहीं रहने के तनाव में पति ने शराब पीना शुरू कर दिया और उनके साथ मारपीट करते हैं।

- लॉकडाउन के कारण बच्चों के शिक्षा पर बहुत असर पड़ा। लॉकडाउन के बाद लड़कियों को वापस स्कूल भेजने की उम्मीद बहुत कम या नहीं है।

- घर में बुनकारी से जुड़े कुछ काम करके औरत कुछ पैसा कमा पाती थी, बचत कर पाती थी और कभी-कभी अपने मर्जी से खर्च कर पाती थी। अब महिलाओं का काम बंद हो जाने के कारण महिलाओं का यह अवसर भी ख़त्म हो गया।

- आमतौर पर महिलाओं को कर्ज या लोन लेने में विकल्प के बारे में पता नहीं होता है।

- आजमगढ़ में 60 प्रतिशत महिलाएँ और 52 प्रतिशत बच्चे अनेमिया के शिकार हैं। आजमगढ़ को राहुल सांस्कृतायन, कवि कैफी आज़मी और अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध साहित्य के लिए जाना जाता था, उसे अब कुपोषण और अनेमिया के लिए जाना जाता है। गरीबी के कारण माओं को पौष्टिक खाना नहीं मिल पता, इसके चलते नवजात बच्चे भी अनेमिया के शिकार होते हैं। गरीब परिवारों से कुपोषित बच्चों की संख्या ज़िले में 42000 से ज़्यादा है और बहुत ज़्यादा कुपोषित बच्चों की संख्या 7415 है। इसके बावजूद किसी भी बच्चे का पोषण पुनर्वास केंद्र में उपचार नहीं किया गया। *(स्रोतः अमर उजाला 8 जनवरी, 2021)।*

बुनाई उद्योग में पूर्ति शृंखला (सप्लाई चेन)

पूर्वांचल के पारंपरिक बुनाई उद्योग पर पूर्ववर्ती सरकारों की गलत नीतियों और कोविड महामारी के प्रभाव को समझने के लिए हमें इसे बनाने के सभी चरणों और इसे बेचने के सभी चरणों पर ध्यान से गौर करना होगा। इसमें भी उत्पादन में लगने वाले सामानों और उन्हें किस तरह से हर चरण में एक साथ उपयोग किया जाता है, पर विशेष ध्यान देना है। नीचे आपूर्ति शृंखला और सामान बनने के प्रक्रिया को दिखाया गया है।

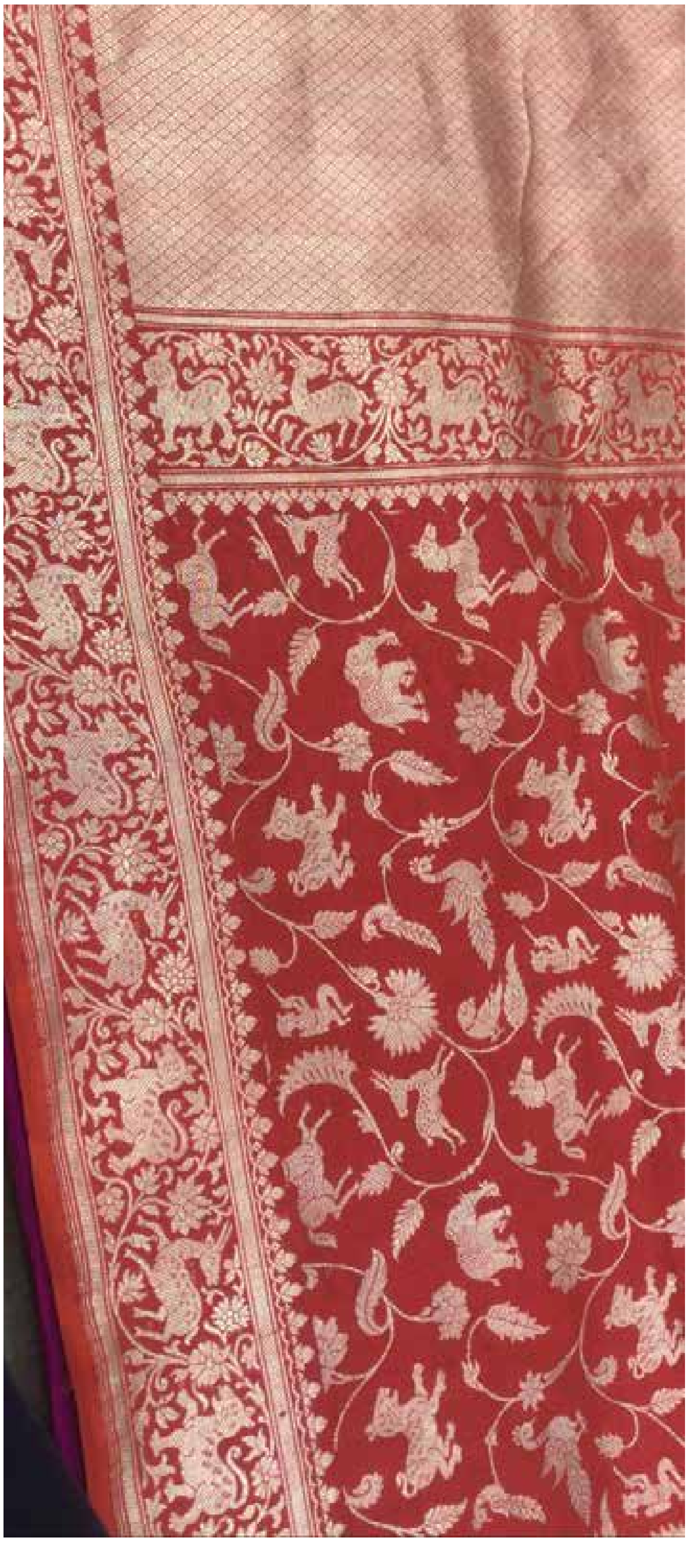

पारंपरिक सप्लाई चेन

1. गृहस्ता कच्चा धागा जुटाता है।
2. धागा को ताना में बदला जाता है।
3. ताना को ब्लीच और रंगाई किया जाता है।
4. बाना को अंटा पर चढ़ा दिया जाता है।
5. प्रत्येक धागा करघे पर लगाया जाता है
6. बेस रंग के लिए रेशमी धागे का उपयोग करके बाना तैयार किया जाता है।
7. बाना को पहले ब्लीच और रंगाई किया जाता है।
8. ताना को तूर पर लपेटा जाता है।
9. नरी भरना (आमतौर पर महिलाएँ बगैर मजदूरी के करती हैं)।
10. गृहस्ता डिज़ाइन बनाने के लिए डिज़ाइनर रखता है।
11. अंतिम तय किया हुआ डिज़ाइन ग्राफर को दिया जाता है।
12. वांछित आकार का डिज़ाइन पट्टा (ग्राफशीट) पर तैयार किया जाता है
13. डिज़ाइन के लाइन पर पट्टा को मशीन में डाला जाता है।
14. एक सैंपल बनाया जाता है।
15. बुनाई के लिए तय की हुई डिज़ाइन को मंजूरी दी जाती है।
16. बुनाई का मुख्य काम शुरू होता है।
17. बुनकर गृहस्ता को तैयार उत्पाद देता है
18. गृहस्ता बुनकर को भुगतान करता है
19. गृहस्ता उत्पाद को गद्दीदारों को सौंपता है
20. गद्दीदार इसे अपनी दुकानों पर ग्राहकों को बेचते हैं।

    कुछ बुनकर सीधे अपने उत्पाद बेचते हैं।

पारंपरिक पूर्ति शृंखला

गृहस्ता का सप्लायर से कच्चा धागा खरीदने से ये शृंखला शुरू होती है। सप्लायर को माल चीन या बेंगलुरु से मिलता है।

इस धागे को ताना में बदला जाता है। ताना की ब्लीचिंग और रंगाई कि जाती है। ताना को तूर में लपेटा जाता है। ताना 26 मीटर लम्बा होता है, इसलिए यह काम घर में नहीं हो सकता। ताना को लपेटने के बाद सभी धागों को एक–एक करके करघे पर चढ़ाया जाता है।

यह प्रक्रिया पूरी होने के बाद बाना तैयार किया जाता है। बाना में बेस कलर के लिए रेशमी धागे का उपयोग किया जाता है। रंगाई से पहले बाना की ब्लीचिंग करना जरूरी होता है। इसके बाद बाना को अंटा पर चढ़ा दिया जाता है।

जिसके बाद नरी भरने का काम घर की महिलाएँ करती हैं। उन्हें आमतौर पर इस काम के लिए मजदूरी नहीं मिलती है। इस काम को महिलाओं के घरेलू काम का हिस्सा समझा जाता है।

इस बीच गृहस्ता नक्शा बनाने के लिए डिज़ाइनर को काम पर लगाता है।

अंतिम रूप से तय किया गया डिज़ाइन, ग्राफर को दिया जाता है और उसे डिज़ाइन के आकार के बारे में बताया जाता है।

वांछनीय आकार के डिज़ाइन को पट्टा नाम की ग्राफ शीट पर उतारा जाता है। इस शीट को मशीन में डाला जाता है और डिज़ाइन लाइन पर छेद किया जाता है।

पहले एक सैंपल तैयार किया जाता है और उसे सही और संतोषजनक पाए जाने पर ही उसे मंजूर किया जाता है।

डिज़ाइन के ज़रूरत के अनुसार धागों की रंगाई की जाती है।

इन प्रक्रियाओं के पूरा होने के बाद बुनाई का असल काम शुरू होता है।

एक कपड़ा, चाहे साड़ी हो या पहनने का दूसरा कपड़ा हो, बनाने के काम में 30–40 लोग शामिल होते हैं। कोई डिज़ाइन कर रहा है तो कोई ग्राफ का काम कर रहा है, कोई रंगाई का काम कर रहा है, कोई ताना का काम कर रहा तो कोई बाना का काम कर रहा है। कोई सिर्फ रेशमी धागे का काम कर रहा तो कोई मशीन के किसी एक विशेष हिस्से का काम कर रहा होता है। अक्सर एक से ज़्यादा बुनकर काम में लगे रहते हैं।

बुनाई करने वालों को स्थानीय भाषा में बुनकर कहा जाता है। बुनकरों को प्रति साड़ी के हिसाब से भुगतान किया जाता है। साड़ी बुनने के बाद बुनकर उसे गृहस्ता को देता है। आमतौर पर बुनकरों को साड़ी देने के तुरंत बाद ही भुगतान कर दिया जाता है। गृहस्ता सामान को गद्दीदार (व्यापारी) को देता है और वे इसे अपनी दुकान पर बेचते हैं।

पहले कुछ बुनकर पारंपरिक शाम की बाज़ार जिसे सट्टी कहा जाता था, वहाँ अपना सामान सीधा ग्राहकों को बेचते थे। ये बाज़ार बनारस के गोलघर में लगता था। ये बाज़ार पिछले दो दशकों से बंद हो गया है लेकिन अपने सुनहरे दिनों में इस बाज़ार में न सिर्फ थोक खरीददार और व्यापारी आते थे बल्कि आम लोग भी सीधे बुनकरों से सामान खरीदने के लिए आते थे।

पारंपरिक रूप से गृहस्ता और बुनकर मुस्लिम समुदाय से और गद्दीदार हिंदू समाज के रहे हैं। बुनाई उद्योग दोनों समुदाय को एक साथ लाया है। एक तरह से कहा जाय तो दोनों समुदाय साझा रूप से ज़िंदगी को बुनते आये हैं।

कॉर्पोरेट घरानो के आने का प्रभाव

अलग-अलग कॉर्पोरेट संस्थाएं बड़े गृहस्थों से संपर्क करती हैं

↓

गृहस्तों द्वारा चलाये जा रहे कारखानों में बुनकर काम करते हैं

↓

गृहस्त अलग-अलग कॉर्पोरेट को तैयार उत्पाद की आपूर्ति करता है

↓

तैयार उत्पाद को कॉर्पोरेट अपने ब्रांड के नाम से बेचते है

↓

उत्पाद उच्च लाभ पर बेचा जाता है

कॉर्पोरेट घराने के आने से पड़ने वाला प्रभाव

बुनाई उद्योग में बड़े कॉर्पोरेट घरानों के आने से पारंपरिक पूर्ति शृंखला के कई कड़ियाँ गायब हो गई हैं। इस उद्योग के बड़े खिलाड़ियों में फैब इंडिया, टाटा समूह के मातहत तनेरिया, बिड़ला का आद्यम और कई तरह के ब्राण्ड और मशहूर डिज़ाइनर शामिल हैं। इन घरानों के पास मुंबई, दिल्ली, कोलकाता, बैंगलूरु, हैदराबाद और अहमदाबाद में बड़े-बड़े शो रूम हैं, जिनकी मदद से उत्पाद शहरी उपभोक्ता तक पहुंचता है। हालांकि बनारस के बुनकर अपना नेटवर्क बनाने के लिए बुनकर सेवा केंद्र का सदस्य बन सकते हैं। इसके अलावा रेशम उत्पाद बनाने वाले प्रदर्शनी का आयोजन भी करते हैं।

बुनाई के आइटम की संख्या भी बढ़ी है। आज बुनकर सिर्फ साड़ी नहीं बुनते है, वे तकिया कवर, स्कार्फ, स्टोल, बैग और सजावट के सामान भी बनाते हैं जो सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि अंतराष्ट्रीय बाज़ार में भी बिकता है। हकीकत में तिब्बती और बौद्ध रूपांकन भी बहुत पसंद किए जाने लगा है। काठमांडू के व्यापारियों के जरिए इन्हें चीन में बेचा जाता है।

इस उद्योग में कॉर्पोरेट के आने से कुछ मामलों में गृहस्ता की भूमिका समाप्त हो गई है, तो कुछ मामलों में कॉर्पोरेट गृहस्ता से उसका उत्पाद सीधे ले लेता है। ये कंपनियाँ न सिर्फ गृहस्ता को ऑर्डर देती हैं बल्कि उनके साथ डिज़ाइन भी साझा करती हैं।

कुछ बड़े उत्पादकों के पास 150-200 करघे हैं। इन करघों का उपयोग बड़े कॉर्पोरेट के ऑर्डर को तैयार करने के लिए किया जाता है। वे बुनकरों को काम करने के लिए अपने कारख़ानों में बुलाते हैं।

इससे इतर बुनकरों का पूरा परिवार इस काम में लगा रहता है। बुनकर 10-15 दिन रोजाना 8-10 घंटा काम करके एक साड़ी बनाता है। इसके लिए उसे 5,000-6,000 रूपया मिलता है।

इस साड़ी को व्यापारी 150-200 प्रतिशत मुनाफा पर बेचता है। कुछ मामलों में अगर बनारस का व्यापारी कॉर्पोरेट को अपना सामान 3,000 रूपए मीटर पर बेचता है तो इसका रीब्रांडिंग करके कॉर्पोरेट इसे 8,000-10,000 रूपए में बेचता है। इसी तरह से बनारस के व्यापारी द्वारा कॉर्पोरेट को बेचे गए 10,000 रूपए के कपड़े को कॉर्पोरेट 25,000 रूपए में बेचेगा।

हालांकि हमनें जिन गृहस्ताओं से बातचीत की उनमे कुछ लोगों ने इस व्यापार में बड़े पैमाने पर बेईमानी होने का जिक्र किया। इन लोगों ने कुछ बड़े कॉर्पोरेट द्वारा पावरलूम के उपज को हथकरघा की उपज के रूप में चलाने की बात कही।

पूरी सप्लाई चेन बदल चुकी है। कॉर्पोरेट घराने अकूत मुनाफा कमा रहे हैं लेकिन बुनकरों की स्थिति को सुधारने के लिए कॉर्पोरेट कुछ नहीं कर रहा है। कॉर्पोरेट मुनाफा बढ़ने के बावजूद वह बहुत कम हिस्से में भी नीचे के बुनकरों तक नहीं पहुँच रहा है। बुनकर आज भी किसी तरह से गुजर बसर करने की जद्दोजहद कर रहा है, उसके लिए रोज कमाना और रोज खाने का जुगाड़ करना ही ज़िंदगी बन गया है। महामारी ने बुनकरों की स्थिति को और ख़राब कर दिया है, जिसके कारण बुनकर भुखमरी के कगार पर आ गए हैं। बाज़ार पर पूरा नियंत्रण करने वाले कॉर्पोरेट, महामारी के समय बुनकरों की मजदूरी/ रेट को कम करने के लिए भी मजबूर कर रहे थे। कॉर्पोरेट के प्रवेश का एक नतीजा इस आर्थिक क्षेत्र में काम करने वाले लोगों के बीच आर्थिक विषमता बढ़ी है। 100-200 करघे रखने की आर्थिक हैसियत वाले गृहस्ता बहुत कम बचे हैं। ये लोग अब कॉर्पोरेट के लिए काम करते हैं और अपने को मेनूफ़ेक्चरर कहते हैं। अब सप्लाई चेन कुछ इस तरह की हो गयी है।

बुनकर------ मेनूफ़ेक्चरर----- कॉर्पोरेट

बनारसी बुनाई उद्योग और मानवाधिकार

संयुक्त राष्ट्र के व्यापार और मानवाधिकार पर दिशा-निर्देशक सिद्धांत को सर्वसम्मति से संयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकार काउंसिल में जून 2011 को अनुमोदित किया गया। इसने सदस्य राष्ट्रों और कंपनियों को मानव अधिकारों का सम्मान करते हुए व्यापार संचालन करने की जिम्मेदारी को सुनिश्चित करने की दिशा में योगदान किया या कम से कम मानकों को स्वीकार्य बनाया।

व्यापार को मानव अधिकार के बारे में समझ बनाने, व्यापार तथा व्यापारियों के गतिविधि और व्यापार संबंध किस तरह से मानव अधिकार को प्रभावित करता है और किस तरह से व्यापारी इन प्रभावों को दूर करने को सुनिश्चित कर सकता है जैसे सवालों का जवाब खोजने में मानव अधिकारों पर अंतराष्ट्रीय मानव अधिकार विधेयक और अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन के सम्मेलन बुनियादी संदर्भ बिंदु प्रस्तुत करता है।

कंपनियों के काम के स्वरूप के अनुसार वे समाज में हाशिये पर रहने वाले लोग, कई तरह की दिक्कतों का सामना करने वाले लोग, समाज की मुख्य धारा से कटे हुए लोगों के मानव अधिकारों की रक्षा करने के लिए मानव अधिकारों मानकों में अतिरिक्त अधिकार को जोड़ सकते हैं। क्योंकि बच्चे, महिलाएँ, आदिवासी, धार्मिक और जातिय अल्प-संख्यक, दिव्यांग लोगों के मानव अधिकारों का उल्लंघन होने पर विशेष रूप से असुरक्षित हो जाते हैं।

यह दिशा-निर्देशक सिद्धांत तीन स्तंभों पर खड़ा है :

1. तीसरे पक्ष जिसमे व्यापार भी है, द्वारा मानव अधिकार का उल्लंघन न हो ये राज्य का कर्तव्य है। राज्य यह ज़िम्मेदारी उपयुक्त नीतियाँ, कानून, नियमन और नियम बनाकर करती है। काम और श्रम की मर्यादा, सम्मानजनक मजदूरी, बुनाई उद्योग जैसे उद्योग में कारीगर और बुनकरों की सामाजिक सुरक्षा को सुनिश्चित करना इसमें शामिल है।

2. मानव अधिकारों का सम्मान करना कॉर्पोरेट की ज़िम्मेदारी है। लोगों के अधिकारों का अतिक्रमण होने से रोकने के लिए धीरज से काम करना और उनके अधिकारों पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों को दूर करने का प्रयास करना भी कॉर्पोरेट की ज़िम्मेदारी है। इस विस्तृत फ़ैक्ट फ़ाइंडिंग अध्ययन में हमनें इन दिशा-निर्देशों और न्यूनतम मानकों का पूरी तरह से उल्लंघन होते हुए देखा है। कोविड-19 महामारी के समय फैली भयानक निराशा के दौर में राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय व्यापार चेन, ब्रांड, कॉर्पोरेट सभी ने भरपूर मुनाफा कमा के देने वाले तबके के प्रति सभी जिम्मेदारियों से पूरी तरह पल्ला झाड लिया।

3. व्यापार संबंधी मानव अधिकारों के उल्लंघन के शिकार लोगों को न्यायिक और गैर-न्यायिक कारगर निदान तक पहुँच की ज़रूरत है।

दिशा निर्देशक सिद्धांतों के अनुमोदित होने के बाद अंतराष्ट्रीय दायरे में व्यापार और मानव अधिकार के मानकों में सामंजस्य लाने की कोशिश की गयी। इससे इस सिद्धांतों का व्यापार और मानव अधिकार के अधिकृत मानक होने की स्थिति को मजबूत किया। हालांकि भारत में सामान्यता और बनारसी बुनाई उद्योग में इन मानकों की अवहेलना बहुत स्पष्ट है।[1].

[1] https://www.ungpreporting.org/resources/the-ungps/

बनारसी साड़ी और बौद्धिक संपदा अधिकार

इस बात की जानकारी बहुत कम लोगों को है की बनारसी साड़ी और ब्रोकड बनाने वाला इस बौद्धिक संपदा का मालिक हैं। बुनकर और कारीगर इस बात से पूरी तरह अंजान हैं की 2009 में जियोग्राफिकल इंडिकेशन हैंडीक्राफ्ट [2] के तहत पंजीकृत बनारसी साड़ी और ब्रोकेड पूर्वांचल कारीगरों कि बौद्धिक संपदा [3][4] है।

सरकार, अन्य हितधारकों, व्यापार और कॉर्पोरेट इस बात को लोगों के सामने लाते हैं तो इस संपदा का निर्माण करने वाले का शोषण ख़त्म हो जायेगा।

प्ररूप O-2 FORM O-2

बौद्धिक सम्पदा भारत INTELLECTUAL PROPERTY INDIA

भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA

भौगोलिक उपदर्शन रजिस्ट्री
Geographical Indication Registry

वस्तुओं का भौगोलिक उपदर्शन (रजिस्ट्रीकरण तथा संरक्षण) अधिनियम, 1999
Geographical Indication of goods (Registration and Protection) Act, 1999

धारा 16 (1) के अधीन भौगोलिक उपदर्शन अथवा धारा 17 (3) (ई) के अधीन प्राधिकृत उपयोक्ता के रजिस्ट्रीकरण का प्रमाणपत्र
Certificate of Registration of Geographical Indication under section 16 (1) or of authorised user under section 17(3)(e)

भौगोलिक उपदर्शन संख्या:
Geographical Indication No.: 237

CERTIFICATE NO: 193

प्राधिकृत उपयोक्ता संख्या
Authorised user No.:

दिनांक
Date : 29.04.2011

प्रमाणित किया जाता है कि भौगोलिक उपदर्शन (जिसकी समाकृति इसके साथ उपाबद्ध है) / प्राधिकृत उपयोक्ता

के नाम से वर्ग में संख्या के अधीन दिनांक को

के लिए रजिस्टर में रजिस्ट्रीकृत किया गया है।

Certified that the Geographical Indication (of which a representation is annexed hereto)/ authorised user has been registered in the register in the name of Banaras Bunkar Samiti; Human Welfare Association; Joint Director Industries (Eastern Zone); Uttar Pradesh Handloom Fabrics Mktg.Co.op Federation Ltd; Eastern U.P Exporters Association; Banarasi Vastra Udyog Sangh; Director of Handlooms & Textiles U.P; Banaras Hath Kargha Vikas Samiti Ltd; Adarsh Silk Bunkar Sahkari Samiti Ltd.

Condition & Address continued in page -2

in class 23, 24, 25 & 26 under no. 237 as of the date 29.04.2011

in respect of **"BANARAS BROCADES AND SAREES (LOGO)"**

Falling in Class-23 in respect of - Silk Brocades like Amru Brocades etc.
Class-24 in respect of - Textiles Good not classified elsewhere i.e Bed and Table covers, etc.
Class-25 in respect of - Silk Saree, Dress Material, like Silk Jamdhani, Jangla Sarees, Jamewar Tanchoi Sarees, Tissue Saree, Cut Work Saree, Butidar Sarees, etc.
Class-26 in respect of - Silk Embroidery Sarees, etc.

आज दिनांक माह 20 को चेन्नई में मेरे निदेश पर मुद्रांकित किया गया।

Sealed at my direction this 30 day of March 20 13 at Chennai.

रजिस्ट्रार, भौगोलिक उपदर्शन
Registrar of Geographical Indication.

[2] https://search.ipindia.gov.in/GIRPublic/Application/Details/237

[3] https://timesofindia.indiatimes.com/city/varanasi/Banara-si-silk-gets-gi-recognition/articleshow/5023601.cms

[4] https://indianexpress.com/article/india/bangladesh-manufactur- in-g-Banarasi-Saree-in-gross-violation-of-geographical-indication-law/

उद्योग के लीडर लोगों का साक्षात्कार

हाजी हसीन मोहम्मद

हाजी हसीन मोहम्मद के बेटे हाजी मोइनुद्दीन कहते हैं "हमारा परिवार 150 साल से बुनाई के कारोबार में है"। उनका व्यापार बनारस की पीली कोठी में है। इस व्यापार में वे सम्मानित व्यक्तियों में एक हैं। आज़ादी के पहले उनका परिवार मुख्यतः तिब्बती ब्रोकेड बनाने का काम करता था, अक्सर शाही ग्राहकों के लिए। "लेकिन ये काम 1952 में चीन द्वारा तिब्बत को अपने में विलय कर लेने के बाद पूरी तरह से बंद हो गया। मेरे पिता इससे कई सालों तक बहुत परेशान रहे और 1975 में हम लोगों ने फिर से ये काम शुरू किया"।

हालांकि वे पारंपरिक हथकरघा के पीछे जाने और पावर लूम के देश में फैलने पर अफ़सोस जताते हैं। "इन दिनों 75-80 प्रतिशत काम पावर लूम पर होता है और सिर्फ 20 प्रतिशत काम हथकरघा पर बुनाई से होता है"। वे आगे कहते हैं "इस पारंपरिक बुनाई को बचाने के लिए हमें क्या क्या करना पड़ता है, इसे सिर्फ हम लोग जानते हैं"।

सप्लाई चेन को इस तरह से समझाते हैं "हम लोग ताना के लिए धागा बंगलूरु और चीन से लाते हैं। बुनकर को देने के पहले ताना की ब्लीचिंग और रंगाई की जाती है"। वे ताना को करघा पर एक-एक धागे को अलग से बुनकर द्वारा लगाने से पहले तूर पर लपेटने के लिए कि गयी कठोर मेहनत का हवाला देते हैं। इसी तरह की प्रक्रिया बाना के लिए भी अपनायी जाती है जहाँ अंटा पर रंगीन रेशमी धागे का उपयोग होता है और लगाया जाता है।

"इसके बाद वह (बुनकर) घर पर नरी भरने का काम करवाता है। "वह अपने घर पर नरी भरता है। इसके बाद हम तय करते हैं कि हम जरी के धागे का उपयोग करेंगे या कुछ और उपयोग करना है। बनारस में जरी सूरत से आती है। बनारस में हम स्थानीय बाज़ार से जरी खरीदते हैं। बुनाई का असली काम तब जा कर शुरू होता है"।

बुनी गयी साड़ी ग्राहक को बेचीं जाती है। हाजी हसीन मोहम्मद बड़े कॉर्पोरेट घरानों के साथ भी काम करते हैं। इनमे से एक बिड़ला भी हैं। "हम उनके साथ 6-7 साल से काम कर रहे हैं। मुख्यत हम उनके लिए घर के अंदर के सजावट की सामग्री जैसे, तकिया की कवर आदि तैयार करते हैं। लेकिन पिछले एक साल से वे हमें साड़ी के रंग और डिज़ाइन भी दे रहे हैं"। कटिंग और ग्राफ का काम पूरा होने के बाद वे उसे अपने कारीगर को देते हैं। तैयार हुआ सामान ग्रासिम या आद्यम के ब्रांड नाम से बिकता है। वे अपना सामान ऋतु कुमार जैसे डिज़ाइनर को भी बेचते हैं। हम उन्हें तैयार सामान में से चुनने को कहते हैं। उसके बाद हम उन्हें कूरियर करते हैं और बिल भेजते हैं। वह अपने ब्रांड नाम से उन्हें बेचती हैं।

"मनीष अरोड़ा और राजेश प्रताप जैसे डिज़ाइनर दूसरे तरह से काम करते हैं। वे हमारे डिज़ाइन नहीं लेते, हमें डिज़ाइन देते हैं।

मैं ग्राफ कार्ड को कट करके हमारे करघे पर बुनने के लिए देता हूँ। वे हमें कलर मैच के बारे में बताते हैं, हम उस तरह से बनाते हैं और उन्हें कूरियर करते हैं। हम बिल बनाकर भेजते हैं और हमें भुगतान मिल जाता है"।

लेकिन हाजी हसीन मोहम्मद को इस बात का मलाल है की कुछ बड़े डिज़ाइनर किसी मशहूर शख़्स को बनारस के बुनकरों द्वारा बनाई गई साड़ी पहनाकर उसे अपने ब्रांड के जरिए बहुत ज़्यादा कीमत पर बेचते हैं। एक डिज़ाइनर ने हिंदी सिनेमा की किसी अभिनेत्री को साड़ी पहनाकर उसका फोटो मुझे व्हाट्सअप पर भेजा। मैंने यह साड़ी 25,000 रूपया में बेचा लेकिन ये डिज़ाइनर अब इसे 80,000 रूपया में बेचेगा। हम क्योंकि साड़ी ज़्यादा दाम पर नहीं बेच पाएंगे, इसलिए बुनकरों को भी ज़्यादा पैसा नहीं दे पाएंगे। डिज़ाइनर बड़ा मुनाफा कमाएंगे लेकिन उसका कुछ हिस्सा भी रिसकर निचले पायदान पर रहने वाले बुनकर तक नहीं पहुंचेगा।

लेकिन अब बुनकर और कारीगर ज़्यादा मांगने लगे हैं। धीरे-धीरे बुनकर अब रेट बढ़ाने लगे हैं। अगर हम उन्हें ज़्यादा रेट नहीं देते हैं तो वे हमें छोड़कर चले जायेंगे। ज़्यादा रेट देने पर साड़ी का उत्पादन खर्च बढ़ेगा और आर्थिक रूप से चल नहीं पाएगा। सरकार अगर हमें कुछ मदद करें तो हमारे लिए बुनकरों का रेट बढ़ाना संभव हो पाएगा।

हाजी हसीन मोहम्मद पिछले कुछ समय में चीन के ग्राहकों के साथ काम करने लगे हैं। चीनी लोगों को बुद्धिस्ट मोटीफ़्स पसंद है। उन लोगों का काठमांडू में एक संपर्क है। हम वहाँ माल भेजते हैं, वह उसे चीन भेजता है।

हसीन 25 प्रतिशत मुनाफा कमाने का लक्ष्य रख रहे हैं। लेकिन उनके पास जमा स्टॉक देखकर उन्हें ऐसा होता हुआ नहीं दिखता।

अमरेश कुशवाहा

बनारस के रामनगर इलाके के गुलहाघाट के अमरेश कुशवाहा उस्ताद बुनकर हैं। उनका परिवार बुनाई के काम में पिछले 40 सालों से है। हालांकि वे पेशे से वकील रहे हैं लेकिन उन्होंने 1994 में वकालत छोड़ दिया और 1995 से पूरा समय बुनाई के काम में लगाने लगे। वे कहते हैं "मेरे पास 100 करघा है और मेरे यहाँ 200 कुशल बुनकर और 100 हेल्पर काम करते हैं। इससे अतिरिक्त मैं 200 बुनकरों से तैयार माल खरीदता हूँ। हम बनारसी साड़ी, लहंगा, हथकरघे पर बनी साड़ी, दुपट्टा, ड्रेस मिटिरियल, पर्दा स्टोल, स्कार्फ, शाल तैयार करते हैं"। उनके पास रामनगर में अपना शो रूम है। उनके ज्यादातर ग्राहक सबसे बेहतर निर्माता के रूप में उनका नाम होने के कारण उनके पास आते हैं।

कुशवाहा बताते हैं "एक साड़ी बनाने में कम से कम 18,000-20,000 रूपया खर्चा पड़ता है। लेकिन ये खर्चा 3 लाख से 4 लाख रूपया तक भी हो सकता है"। कुशवाहा कम से कम 60-70 प्रतिशत मुनाफा कमाने की कोशिश करते हैं, कई बार ये 100 प्रतिशत भी हो जाता है। कुशवाहा राज्य सरकार द्वारा हस्तकरघा उत्पाद को बेचने के लिए बनाए गए सरकारी व्यवस्था के साथ समन्वय करके काम करते हैं। उनके पास पंजीकृत सहकारी संस्था है। उनका उत्पाद न सिर्फ पूरे देश में बिकता है बल्कि जापान, स्विटजरलैंड और जर्मनी में भी उनके कुछ ग्राहक हैं।

"हमारे पास हथकरघा उत्पाद का अच्छा बाज़ार था, लेकिन लॉकडाउन ने सब कुछ बर्बाद कर दिया। चार महीने तक कोई भी काम पर नहीं आ पाया। इसलिए काम करने वाले 500 लोग अचानक बहुत बुरी आर्थिक तंगी में पड़ गए"। उनका पैसा ग्राहकों के पास फंसा रह गया, बावजूद उन्होंने अपने कर्मचारियों को मदद करने की पूरी कोशिश की। कुशवाहा कहते हैं कि कारीगरों मे "75 प्रतिशत अल्पसंख्यक समुदाय से हैं और 25 प्रतिशत बहुसंख्यक समुदाय से हैं। आमतौर पर हिंदुओं में सभी अति पिछड़ा वर्ग से हैं"।

बुनकरों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना को लेकर बहुत बहस हुई है। महात्मा गांधी बीमा योजना के तहत हम हर बुनकर के लिए 40 रूपया देते हैं और उतना ही

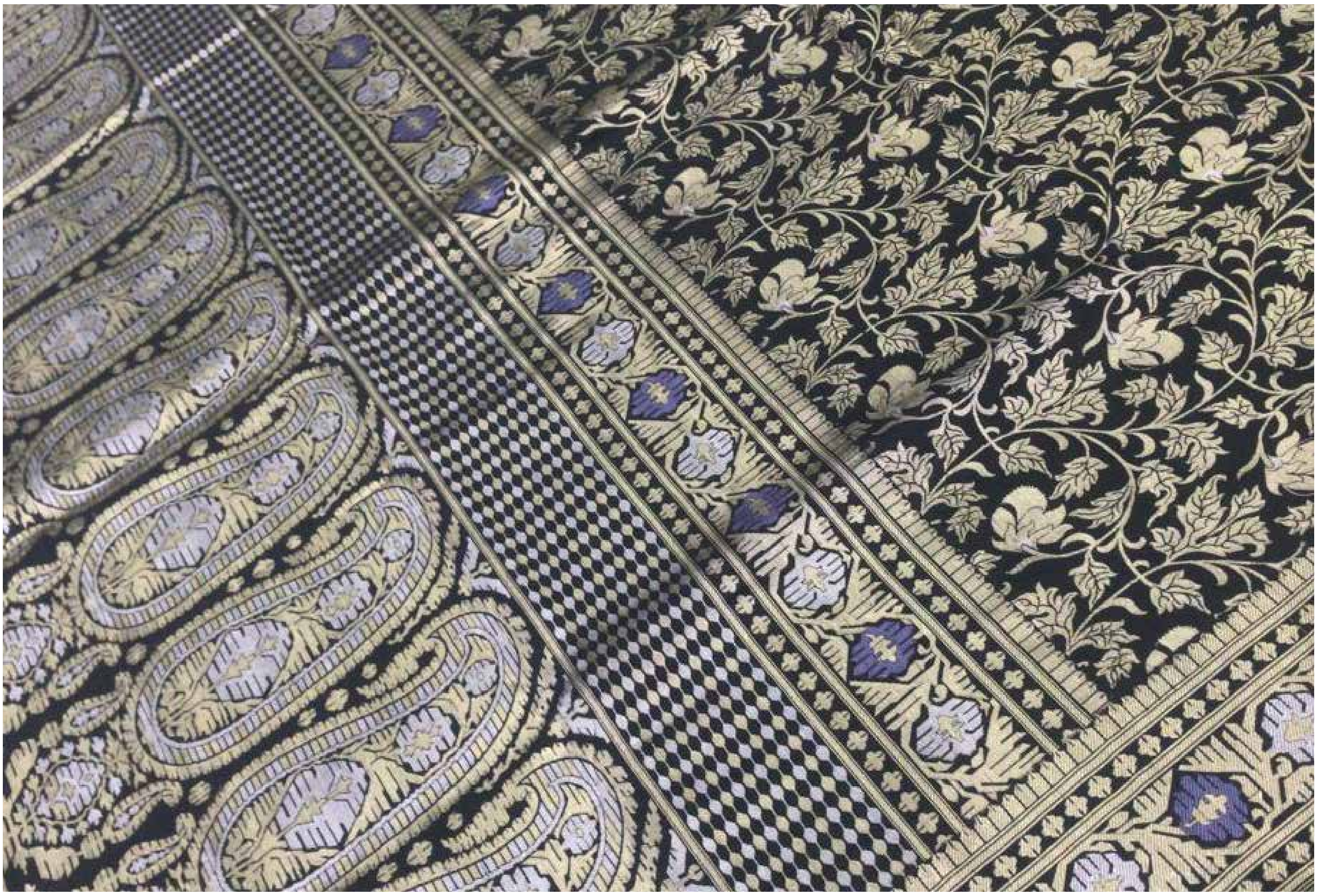

पैसा सरकार देती है। यह योजना 15 साल से चल रही थी। 2017 में इसे बंद कर दिया गया। इसके अलावा पढ़ाई कर रहे बुनकरों के बच्चों को महीने में 100 रूपया वजीफा दिया जाता है। लेकिन अचानक लॉकडाउन अभूतपूर्व आर्थिक तबाही ले आया।

कुशवाहा कहते हैं "मैंने अपने पुराने कारीगरों को आर्थिक संकट से उबरने और खर्चा पूरा करने के लिए कर्ज दिया है। आखिर इनमे कई लोग मेरे साथ 25 साल से काम कर रहे हैं। मैं उनकी गुहार को वो भी ऐसे वक़्त में नजरअंदाज नहीं कर सकता जब उनके परिवार में कोई बीमार हो या जब उन्हें अचानक कुछ पैसे की ज़रूरत हो।

"मुंबई, हैद्राबाद, कोलकाता और दिल्ली में मेरे ग्राहक हैं। लेकिन लॉकडाउन के समय कई सबसे बड़े ग्राहकों के साथ कारोबार पूरी तरह से बंद हो गया। इनमे टाटा के तनेरा और फैब इंडिया शामिल हैं। चार-पाँच महीना हम लोग कुछ भी नहीं कर पाए"।

कुशवाहा को हथकरघा के चले जाने को लेकर अफसोस है। वे बताते हैं "1995 में 1,20,000 हथकरघे थे। लेकिन एक के बाद एक 2000 और 2010 के आर्थिक संकट के चलते हथकरघे की संख्या में भारी कमी आई। आज सिर्फ 20,000 से 25,000 हथकरघे हैं, इसकी संख्या में 80 प्रतिशत गिरावट आई है"। लेकिन कुशवाहा हथकरघा के प्रति निष्ठा दिखाते हुए कहते हैं "पावर लूम कभी नहीं"। पहले हमारे पास 400 हथकरघे थे, अब सिर्फ 100 हैं। लेकिन मैं धीरे-धीरे पुराने आंकड़े पर पहुँचने की कोशिश कर रहा हूँ"।

आजकल ज़्यादातर लोग पावर लूम पर काम करना पसंद करते हैं। हथकरघा पर कमर तोड़ मेहनत करनी पड़ती है। हथकरघा पर काम करने के लिए लोगों को पूरा दिन गद्दी पर बैठे रहना पड़ता है। हथकरघा पर फेब्रिक बनाने पर 500-600 रूपया मजदूरी मिलती है। "इसमें विशेष तरह की कला है और ज़्यादा धैर्य की ज़रूरत होती है"। लेकिन पावर लूम पर लोग खड़े रहकर और आराम से काम कर सकते हैं और पैसा कमा सकते हैं। कुशवाहा कहते हैं की पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को हथकरघा का काम नहीं सिखाना चाहती। पढ़े लिखे युवा पावर लूम पर काम करना पसंद करते हैं।

कुशवाहा को लगता है की बुनकरों के रहने के जगहों पर प्रशिक्षण केंद्र खोलने से बुनकरों में हथकरघा को लेकर रुचि बढ़ेगी। कुशवाहा कहते हैं की बुनकरों का अपने बच्चों को पढ़ाने पर ध्यान देना उन्हें अच्छा लगता है। ये अच्छा होगा की पढ़े लिखे बच्चे प्रशिक्षण केंद्र में प्रशिक्षित होकर हस्तकला में महारथ हासिल कर सकें। लेकिन इसके लिए सरकार को निवेश करना होगा। उनका मानना है की ग्राहकों को सिंथेटिक फैब और शुद्ध फैब की गुणवत्ता के अंतर के बारे में जागरूक करना होगा। इस व्यापार में लगे कई निर्माता सिंथेटिक फैब को शुद्ध कॉटन या शुद्ध रेशम फैब के नाम से बेचते हैं। सिंथेटिक फैब में लगने वाला सूत सस्ता है, वह 200 रूपया किलो के दर से मिलता है। लेकिन शुद्ध फैब में बंगलोर और चीन से लाये गए सूत का उपयोग होता है जिसकी कीमत प्रति किलो 400 रूपए से ऊपर है। कुशवाहा कई मेनूफैकचरर का घटिया माल उपयोग करने के कारण को समझा रहे थे। वे कहते हैं की सरकार को भी ग्राहकों को जागरूक करने और उनसे फैब पर जीआई टैग देखने के बारे में बताना चाहिए। इससे ग्राहकों को घटिया सामान मिलने के बजाय बेहतर गुणवत्ता का सामान मिलेगा। इस व्यापार में कई बेइमान लोग सिंथेटिक फैब को असली फैब के रूप में चलाकर ग्राहकों को धोखा दे रहे हैं।

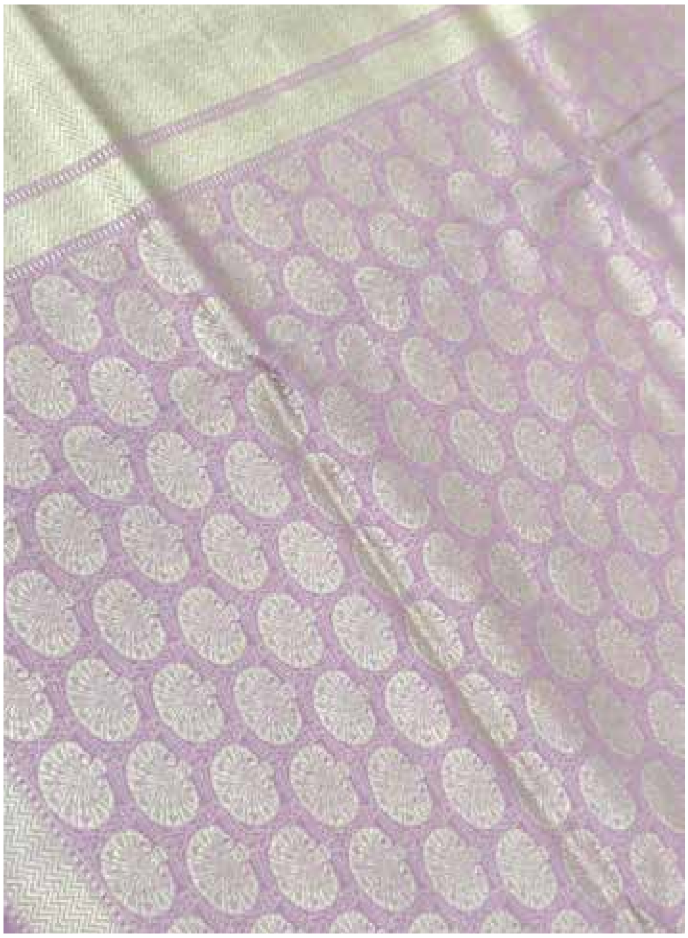

मुमताज़ अहमद

मुमताज़ अहमद बनारस के मदनपुरा में इफ़को साड़ी वाले के नाम से जाने जाते हैं। "हम लोग इस व्यापार में पिछले चार से पाँच पीढ़ी से हैं। लेकिन मैने पूरे उद्योग की आर्थिक सेहत को इतना खस्ता हाल होते जीएसटी शुरू करने, नोटबंदी करने के पहले कभी नहीं देखा था। "लेकिन लॉकडाउन आख़िरी बड़ी मार है"।

"पहले छोटा व्यापारी और दुकानदार भी बनारसी साड़ी बेचते थे। लेकिन आज सिर्फ बड़ा व्यापारी और शो रूम के मालिक इस व्यापार में टिके रह सकते हैं"।

"साल 2000 में भी स्थिति ख़राब थी। उस समय बनारसी साड़ी की मांग घट गई थी और कढ़ाई का काम लोगों को ज़्यादा पसंद आने लगा था। कई बुनकर बनारस छोड़कर बंगलोर और सूरत चले गए थे"। मुमताज़ याद करते हैं और इस उद्योग के पीछे चले जाने के कारणों पर रोशनी डालते हैं "हैंडलूम उद्योग आज पहले के मुक़ाबले कम होकर सिर्फ 20 प्रतिशत रह गया है"।

लेकिन मुमताज़ को लगता है कि कारण सिर्फ यही नहीं है। उन्हें लगता है की कुछ बेमान व्यापारी और मेनूफ़ैकचरर के व्यवहार का इस उद्योग पर नुकसानदायक असर पड़ा।

सूरत के बुनकर कोरियन मशीन का उपयोग करके बहुत कम पैसे में हमारे साड़ी की तरह दिखने वाले साड़ी बनाते हैं। एक साड़ी को हम हथकरघा पर बनाने के लिए 10,000-11,000 रूपए खर्च करते हैं, वे पावर लूम पर उसे सिर्फ 1200 रूपए में बना लेते हैं। लेकिन वे बाज़ार में इसे हथकरघा पर बनी साड़ी बताते हैं। मुमताज़ कहते हैं की सूरत और मुंबई के व्यापारी इस तरह की धोखाधड़ी से व्यापार करते हैं। इसके कारण बनारस के छोटे व्यापारियों के लिए आर्थिक रूप से टिक पाना संभव नहीं हो रहा है।

मुमताज़ को लगता है की इससे निपटने के लिए एक ही तरीका है "सरकार को उत्पाद खरीदना चाहिए और बुनकरों को सम्मानजनक मजदूरी देना चाहिए"।

अंतिम टिप्पणियाँ और कुछ निष्कर्ष

मौजूदा रिपोर्ट 2020 के शुरू से महामारी और उसके कारण किए गए लॉकडाउन का कारीगरी कुटीर बुनाई उद्योग और बुनकरों और अन्य हितधारकों पर प्रभाव के बारे में है।

बुनाई उद्योग के जटिल, बहु-स्तरीय और अंतर-संबंधी ढांचा पर लॉकडाउन के प्रभाव को सरल तरीके से समझा जा सकता है। स्वाभाविक रूप से लॉकडाउन के समय सबसे ज़्यादा मार उद्योग के सबसे निचले पायदान पर खड़े बगैर करघे के बुनकर/मजदूर (हथकरघा और पावर लूम) पर पड़ी। महामारी और लॉकडाउन का उद्योग पर सर्वव्यापी प्रभाव पड़ा। पूरा उद्योग ठप्प हो गया और घोषित रूप से राहत के लिए उठाए गए उपायों का कोई लाभ, सबसे ज़्यादा जरूरतमंदो तक नहीं पहुंचा।

चौथा हैंडलूम सेंसस 2019-2020

पिछले दशकों में 1990 के मध्य से हैंडलूम और पावर लूम के संयुक्त सेंसस (एनसीएइआर) से इतर चौथा सेंसस 2019-2020 किसी अकादमिक संस्थान या विशेषज्ञ ने नहीं किया। इसे हम किसी डाटा प्रबंधन एजेंसियों द्वारा किया गया सेंसस कह सकते हैं। इस अंतिम सेंसस का डाटा अंतर्विरोधों से भरा है और उससे ऐसे निष्कर्ष निकले हैं जो तीसरे सेंसस के डाटा के आगे कहीं नहीं टिकते।

इस सेंसस के कुछ निष्कर्ष नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं :

1. भारत में अधिकांश बुनकर परिवार चार राज्यों जैसे असम (10.9 लाख), पश्चिम बंगाल (3.4 लाख), मणिपुर (2.1 लाख) और तमिलनाडु (1.7 लाख) में रहते हैं।
2. बुनाई मुख्यतः ग्रामीण आर्थिक गतिविधि है, 88.7 प्रतिशत गतिविधि ग्रामीण क्षेत्र में होती है।
3. बुनकरों में महिलाएँ 72 प्रतिशत हैं।
4. इस गतिविधि में प्रति साल प्रति व्यक्ति को औसत 208 दिन काम मिलता है।
5. बुनकरों के सहकारिता तथा उस तरह के संगठन को इसमें शामिल नहीं किया गया है।

इस रिपोर्ट में देश के हैंडलूम गतिविधियों से जुड़े परिवारों की संख्या का तीसरे सेंसस (2009-2010, (एनसीएइआर) की तुलना में बढ़ने का दावा किया गया है। दोनों सेंसस के बीच संख्या 27.83 लाख से 31.5 लाख होने की बात कही गयी है। सरकार ने इस बढ़ोतरी का श्रेय उसके द्वारा हथकरघा बुनकरों को लक्षित नीतियों को दिया है। लेकिन उसी सेंसस रिपोर्ट में 66 प्रतिशत बुनकर परिवारों की मासिक आमदनी 5000 रूपए से कम होने का दावा किया गया है। इस संदर्भ में तीसरे अखिल भारतीय हैंडलूम सेंसस के एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष को दोबारा बताने की ज़रूरत है। इसके अनुसार 1995 से 2010 तक बुनकरों की संख्या 3 लाख घट गयी है। (भौमिक, 2019, ईपीडब्लू आर्टिकल, वॉल्यूम 54, संख्या 49, 14 दिसंबर, 2019)।

बुनकरों की संख्या में इस कथित वृद्धि के साथ देश में हैंडलूम क्षेत्र में कपड़ा उत्पादन में कमी आई है। कपड़ा मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 2017-2018 के अनुसार 2013-2014 में देश में हैंडलूम क्षेत्र में 71,040 लाख वर्ग मीटर कपड़े का उत्पादन होता था वहीं 2017-2018 में ये घटकर 51,340 लाख वर्ग मीटर हो गया। इसकी कोई व्याख्या नहीं है।

वित्तीय वर्ष 2014-2015 और 2018-2019 के बीच केंद्र सरकार का इस क्षेत्र में आबंटन 621.51 करोड़ से घटकर 386.09 करोड़ हो गया।

बुनकरों की कथित संख्या बढ़ने का श्रेय सरकार बुनकरों के प्रति अपनी नीतियों को देना चाहती है। यह चौथा सेंसस रिपोर्ट और अन्य सरकारी रिपोर्ट के तथ्य से मेल नहीं खाता। इसी रिपोर्ट में सरकार खुद कहती है की 65 प्रतिशत बुनकर सरकार की कल्याणकारी योजनाओं के बारे में नहीं जानते।

इसके अलावा कल्याणकारी योजनाओं में निरंतरता का अभाव भी है। सरकार की महत्वपूर्ण मुद्रा योजना में छोटे-उद्योग धंधे को कम ब्याज पर कर्ज देने का प्रावधान है। लाभ लेने के लिए बैंक खाता होना अनिवार्य है। हैंडलूम बुनकर को भी मुद्रा योजना से कर्ज मिल सकता है। हालांकि हालिया सेंसस रिपोर्ट के अनुसार पूरे देश में सिर्फ 23 प्रतिशत बुनकर के पास बैंक खाता है और मुद्रा योजना में सीधा बैंक में पैसे ट्रांसफर का प्रावधान है।

मौजूदा सरकार ने बुनकरों के लिए बनाई गई महात्मा गांधी बुनकर बीमा योजना को कमजोर किया है और 2017 से इसे एक तरह से अनावश्यक बनाकर बुनकरों पर एक और प्रहार किया है। 2017 से बुनकरों के लिए कोई जीवन बीमा योजना नहीं है। इन चौथे सेंसस के डाटा पर भरोसा नहीं किया जा सकता। (भौमिक)

चौथे सेंसस के लिए आंकड़े जुटाने में भी गंभीर खामियां हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में 82 प्रतिशत बुनकर स्वरोजगार कर रहे हैं। लेकिन यह आंकड़े तीसरे सेंसस (2009-2010) के रिपोर्ट और अन्य कई रिपोर्टों के निष्कर्षों के विपरीत है। इन रिपोर्टों में स्वरोजगार में लगे बुनकरों या स्वतंत्र बुनकरों के प्रतिशत में लगातार गिरावट होने और मजदूरी करने वाले बुनकरों के प्रतिशत बढ़ने की ओर इशारा करता है। ऐसे बुनकरों की संख्या और प्रतिशत दोनों बढ़ा है जिनके पास अपना करघा नहीं है। बुनकरों के वर्गीकरण के सवाल के अलावा ये मानना सही नहीं है की अपने घरों में बुनाई का काम करने वाले सभी बुनकर वित्तीय रूप से आत्म-निर्भर हैं। हकीकत में वे कई धागों से उस्ताद बुनकर या गृहस्ता के साथ या अन्य मध्यस्थों के साथ बंधे हुए हैं, वे उनके लिए काम करते हैं। बनारस और पूर्वी उत्तर प्रदेश में ऐसी व्यवस्था को बानी कहा जाता है।

उस्ताद बुनकर और उनके मध्यस्थ का सूत के सप्लाई, मार्केटिंग और यहाँ तक कि करघे के ऊपर नियंत्रण हो सकता है। ऐसे स्थिति में इन बुनकरों को स्वतंत्र कहना कितना सही है? स्वतंत्र बुनकर एक मिथक है और वह इतिहास की धुंध में गायब हो गया है।

ये कहा जा सकता है कि बुनकरों की स्थिति को लेकर चौथे हैंडलूम सेंसस रिपोर्ट (2019-2020) पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

द बैंकर्स इंस्टीट्यूट ऑफ रुरल डेवेलपमेंट, लखनऊ ने एक रिपोर्ट निकाली जिसका शीर्षक था स्टडी रिपोर्ट ऑन प्रॉब्लेम्स एंड प्रोस्पेक्ट ऑफ द हैंडलूम सेक्टर इन एम्प्लोयमेंट जेनेरेशन इन ग्लोबली कोंम्पैटिटिव एनवायरनमेंट इन 2016। यह अध्ययन आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में किया गया। अध्ययन का मकसद हैंडलूम क्षेत्र की विशेषता, संचालन व्यवस्था, और अलग-अलग हितधारकों के मुद्दे, सरोकार और हित के बारे में समझ बनाना था।

इस रिपोर्ट के शुरू में कहा गया कि 1995-2010 के बीच बुनकरों की संख्या में कमी आने के बावजूद पूरे समय बुनाई का काम करने वाले लोगों की संख्या मोटे तौर पर स्थिर है (1995 में 28.6 लाख और 2010 में 28.16 लाख)। इसी बीच प्रति बुनकर को साल में मिलने वाले काम के दिनों की संख्या बढ़ी है, यह 1995 में 197 दिन से 2010 में 234 दिन हो गया।

इन तथ्यों से पता चलता है की इस क्षेत्र के तमाम समस्याओं के बावजूद यह ख़त्म नहीं हो रहा है और इसमें जीवंतता और पुनर्स्थापित होने के संकेत हैं।

इस रिपोर्ट में इस क्षेत्र को पुनर्जीवित करने के लिए कई उपयोगी सुझाव हैं और इन्हें लागू करने से हैंडलूम के स्थिति में सुधार हो सकता है। इस रिपोर्ट के कुछ सुझाव और टिप्पणी नीचे दिए गए हैं :

1. हैंडलूम सेक्टर को सहकारिता मॉडल अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया गया और सरकार की नीतियों ने गाँव और तालुका के स्तर पर प्राथमिक बुनकर सहकारी समिति और राजकीय स्तर पर बुनकर सहकारी समिति का गठन और संचालन को सुगम बनाया। इन समितियों ने सूत की खरीद और पूर्ति का इंतजाम और विपणन का काम भी किया। इस सबके बावजूद राज्य स्तर के हैंडलूम विकास निगम ने सहकारी समितियों के बाहर काम करने वाले बुनकरों की ज़रूरतों को पूरा करने पर ध्यान दिया।

2. हालांकि पिछले 5-10 सालों में एपेक्स समिति और निगम कई कारणो से निष्क्रिय हो गई हैं। इसमें स्टाफ की संख्या ज़्यादा होना, पेशेवर प्रबंधन की कमी, विपणन और वितरण के कमजोर माध्यम शामिल हैं। ऊपर से स्वल्प-कालिक सहकारी ऋण ढांचे की कमजोरी भी इसका कारण है।

3. इस रिपोर्ट में कहा गया की 85 प्रतिशत बुनकर सहकारिता के दायरे से बाहर काम करते हैं। वे उस्ताद बुनकर/व्यापारी के मातहत काम करते हैं और बहुत ही कम प्रतिशत बुनकर स्वतंत्र रूप से काम करते हैं।

4. हैंडलूम सेक्टर के संचालन को बेहतर बनाने के लिए कई सारे सुझाओं के साथ रिपोर्ट में कहा गया है की आधारभूत संरचना का विकास, कौशल वृद्धि और औपचारिक स्त्रोत से कर्जे के द्वारा हैंडलूम क्षेत्र में

ज़्यादा रोजगार सृजन हो सकता है। रिपोर्ट में कई महत्वपूर्ण क्षेत्र में रणनीतिक हस्तक्षेप करने का सुझाव दिया गया है।

5. लेकिन मुख्य बिंदु यह है "इनमें कई सारे हस्तक्षेप बाज़ार के ताकतों के द्वारा किया जाएगा और शुरुआत निजी बाज़ार की ताक़तें करेंगी और सरकार को समर्थन देने और सुगम बनाने वाली भूमिका निभानी होगी"।

हालांकि ऊपर दिए गए बिंदुओं और सुझाओं का महत्व है लेकिन मूल सवाल तो सरकार की नीतियों और नीतियों की रूपरेखा है, जिसमें इन सुझाओं का पालन किया जाना है। यहीं पर ये रिपोर्ट हैंडलूम क्षेत्र में आये मूलभूत बदलाव को नजरंदाज कर देती है। इस बदलाव का दूरगामी असर पूरे हैंडलूम क्षेत्र पर पड़ा है। आज सवाल सरकार के लिए रोजगार सृजन का नहीं है बल्कि यह मशीनीकरण के सहारे राष्ट्रीय अर्थनीति में गति –संचार करने का है। ये स्पष्ट है की बाज़ार अगुआई करेगा और सरकार बाज़ार की ताकतों को समर्थन देने और उनके राह को सुगम बनाने के लिए काम करेगी।

इसे विडम्बना कहना चाहिए की बैंक के रिपोर्ट में हैंडलूम क्षेत्र के लिए जिन सुरक्षा कवचों की बात सुझाई गयी है, वह पहले भी थी। फर्क बस इतना है की इन रक्षा कवचों का उपयोग ऐसी नीतियों के संदर्भ में किया जा रहा है जहाँ बाज़ार की प्राथमिकता को स्थापित मान लिया गया है और जिसमें सरकार की भूमिका बाज़ार की ताकत को आगे बढ़ाने और उसके रास्ते को सुगम बनाना रह गया है।

बुनाई क्षेत्र को पुनर्जीवित करने के लिए सुझाव सरकार की नीतियों के ढांचे का विश्लेषण करके ही दिया जा सकता है। कई दशकों से सरकार की नीति में एक ओर जहाँ हैंडलूम सेक्टर को जीवित रखने में सरकार की केंद्रीय, अनिवार्य और आवश्यक भूमिका को स्वीकार किया गया है तो दूसरी ओर पूरे कपड़ा क्षेत्र के नीतियों में बाज़ार की भूमिका को अंतिम, सबसे ज़्यादा कारगर माना गया है।

हमारी रिपोर्ट महामारी और लॉकडाउन का बनारस और पूर्वी उत्तर प्रदेश में पड़ने वाले प्रभाव को लेकर है। यह रिपोर्ट बुनकर और कारीगरी गृह उद्योग पर सरकार की नीतियों के अंजाम का परेशान कर देने वाली स्थितियों की गवाही है॥

हथकरघा उद्योग की तबाही के साथ पावर लूम क्षेत्र का उभार हुआ। लेकिन अब पावर लूम की विकेंद्रित छोटी–छोटी 3–5 इकाइयों को दूसरे राज्यों के पावर लूम और बड़े कॉर्पोरेट घरानों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है। बंगाल के पावर लूम को बनारस और उत्तर प्रदेश के पावर लूम से खतरा होने लगा है। (भट्टाचार्य, राजेश और शर्मिष्ठा सेन, 2018। "प्राइड एंड प्रेजूडिसः द कंडिशन ऑफ हैंडलूम वीवर इन वेस्ट बेंगल, बेंगलुरु, अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी)।

बहुत सारे नीति विश्लेषकों ने जो बात कही है, उसे हम दोहरा रहे हैं। सरकार की नीति में एक ओर तो हैंडलूम सेक्टर को ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार मुहैया करने, देश की सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा करने के लिए महत्वपूर्ण माना गया है तो दूसरी ओर इस उद्योग को ऐसे उद्योग के रूप में देखा जाता है जिसका समय पूरा हो चुका है या जिसका सूरज ढलने वाला है और जो उद्योग देश की अर्थनीति में कोई उत्प्रेरक की भूमिका नहीं निभा सकता।

सरकार की नीति का यह अंतर्विरोध पिछले कई सालों में और तीखा हो गया है। सरकार अब हैंडलूम सेक्टर की फौरी ज़रूरतों को स्वीकार तक करने को तैयार नहीं है। इसका सबूत जिन्हें देखना है उन्हें हैंडलूम का चौथी सेंसस रिपोर्ट और इसके साथ इस सेक्टर और कारीगरी उद्योग को तबाह करने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदमों को देखना चाहिए।

हमारी रिपोर्ट कोविड महामारी और लॉकडाउन का बुनकर और उनसे जुड़े मजदूरों पर प्रभाव को लेकर है। ये वो समय है जब बुनकरों को तुच्छ अल्प–संख्यक समझा जाने लगा है। हालांकि अब कुछ आवाजें बुनकरों के मुद्दों और मांगों पर उठने लगी हैं।

हमनें बुनकरों के सभी तबकों को इस अध्ययन में शामिल करने की कोशिश की हैं। अध्ययन में बुनकर और उससे जुड़े काम, जरी कारीगर, हथकरघा और पावरलूम के बुनकर, उद्यमी सभी को जगह दी है।

महिलाएँ बुनाई उद्योग की रीढ़ हैं। अक्सर वे अदृश्य रहती हैं और उनकी भूमिका को स्वीकृति नहीं मिलती। संक्षेप में हमनें पूरे बुनकर समुदाय की आवाज को सुना और बताया है।

हमारे सलाहकार समिति के सदस्य और लंबे समय से बनारस के बुनकर समाज के गम में साझेदार अतीक

अंसारी जो खुद व्यापारी हैं, ने हमें तात्कालिक, मध्य अवधि और दीर्घकालिक नजर से अनुसंशा करने का सुझाव दिया। उन्होंनें सरकार से सभी हितधारकों की तुरंत बैठक करने के लिए पहल करने का सुझाव दिया। बैठक में सभी पक्ष के प्रतिनिधि शामिल होंगे और बुनाई उद्योग को जीवित रखने और इस उद्योग को टिकाऊ बनाने के लिए विचार साझा करेंगे। उनकी नजर में सूत व्यापारी, व्यापारी और बुनकर वर्ग के लोग हैं। इन तीनों वर्ग के प्रतिनिधियों को निरंतर संवाद का हिस्सा होना चाहिए।

मानव अधिकारों पर अंतराष्ट्रीय विधेयक और अंतराष्ट्रीय श्रम संगठनो की बुनियादी सम्मेलनों में कॉर्पोरेट और व्यापार को मुनाफे के लिए काम करते समय मानव अधिकार की संस्कृति को समझने और अपनाने का संदर्भ देता है। इस कारीगरी उद्योग में पूर्वी उत्तर प्रदेश के सबसे हाशिये पर रहने वाले मुसलमान, दलित, अन्य पिछड़ा वर्ग और महिलाएँ व लड़कियां शामिल हैं। इस कारण से इन जिम्मेदारियों को पूरा करना ज़्यादा जरूरी है।

इन जिम्मेदारियों को बढ़ावा देने के लिए व्यापार और मानव अधिकार पर संयुक्त राष्ट्र के दिशा-निर्देशक सिद्धांत, 2011 (मानव अधिकार काउंसिल द्वारा जून में अनुमोदित) को मानव अधिकार की रक्षा करते हुए गरिमामय श्रम और श्रम करने के न्यायोचित स्थिति को कंपनी तथा व्यापार द्वारा अनुपालन को सुनिश्चित करना चाहिए। कोविड-19 के लॉकडाउन के समय पूर्वी उत्तर प्रदेश के बुनकर समुदाय और उनके परिवारों को कंपनियों और व्यापार द्वारा आर्थिक-सामाजिक रूप से अपने हाल पर छोड़ देने में ऐसी किसी संवेदनशीलता और ज़िम्मेदारी का अनुपालन होते हुए नहीं दिखा।

निर्देशक सिद्धांतों के अनुमोदित होने के बाद इसने अंतराष्ट्रीय दायरे में व्यापार और मानव अधिकार के मानकों में सामंजस्य लाने की कोशिश की है। इसने इन सिद्धांतों का व्यापार और मानव अधिकार के अधिकृत मानक होने की अवस्थिति को मजबूत किया। हालांकि भारत में सामान्यता और बनारसी बुनाई उद्योग में इन मानकों की अवहेलना बहुत स्पष्ट है।

(*https://www.ungpreporting.org/resources/the-ungps/*)

बनारसी सिल्क से जुड़ाव बहुतों के लिए सुखद और व्यापार और कॉर्पोरेट के लिए मुनाफा कमाने का जरिया है। लेकिन इस कारोबार में मुनाफे की रीढ़ बुनकर समुदाय के प्रति किसी तरह की ज़िम्मेदारी से बचना बहुत बड़ी विसंगति है।

ऐतिहासिक रूप से और विशेष कर 1990 के दशक से उल्लेखनीय संख्या में धार्मिक अल्प-संख्यक मुसलमान समुदाय का बुनाई उद्योग में प्रवेश और समुदाय से व्यापारी और उद्यमी वर्ग के उभरने से वे सांप्रदायिक हिंसा का निशाना बने। यहाँ इसके कारणों पर हम चर्चा नहीं करेंगे, लेकिन इतना कहना काफी है की अनुकूल सामाजिक, व्यापारिक और आर्थिक माहौल के लिए सभी पक्षों की ज़िंदगी की सुरक्षा को सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है।

कोविड 19 महामारी और लॉकडाउन ने हमें सरकार की नीति, नीतियों के परिप्रेक्ष, अंतराष्ट्रीय कानून और समझौता और भारत की केंद्र व राज्य सरकार और कॉर्पोरेट की ज़िम्मेदारी जैसे अहम सवालों तथा पेचीदा मुद्दों पर दोबारा विचार करने का अवसर दिया।

बुनाई उद्योग कृषि क्षेत्र और औद्योगिक क्षेत्र के बहुत सारे पहलुओं से जुड़ा हुआ है। इन्हें अलग-अलग से सुलझाना है।

लेकिन हमारी जमीनी खोज से बुनकर समुदाय के अलग–अलग तबकों की समृद्ध अंतर्दृष्टि हमें मिली। हम इस अंतर्दृष्टि को उनके साथ साझा कर रहे हैं जिनकी बदौलत हमारी खोज और शोध समृद्ध हो सकी और जिनके साथ मिलकर हम अपनी ज़िंदगी को बुनते हैं।

प्रभावित लोगों की सिफ़ारिशें

सम्मानजनक और न्यायोचित मजदूरी : लागत की पूर्ति और बाज़ार पर नियंत्रण के कारण कम्पनियाँ और गद्दीदार बुनकरों की मजदूरी को नियंत्रित करते हैं। अक्सर एक बुनकर एक साड़ी का काम पूरा करने के लिए 15 दिन तक रोजाना 10-12 घंटे काम करता है और उसके बदले उन्हें 1800-2000 रूपए मिलते हैं। गोरखपुर में बुनकर बेड शीट्स और सूटिंग-सर्टिंग सामग्री बनाते हैं। पावर लूम पर 8-10 घंटे काम करने वालों को प्रति मीटर 3 रूपए की दर से मजदूरी मिलती है। मऊ में बुनकर (सामन्यत महिलाएँ) कफ़न बुनती हैं। उन्हें प्रति मीटर कपड़े के लिए 25 रूपए दिए जाते हैं। दिन में वे 4-5 मीटर कपड़े बुन पाती हैं। इसके लिए उन्हें रोजाना 8-10 घंटे काम करना पड़ता है। इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है की उन्हें मिलने वाली मजदूरी किसी भी सूरत में सम्माजनक तरीके से जीने की ज़रूरतों के लिए पर्याप्त से भी काफी कम है। इस दौरान गद्दीदार और निजी कम्पनियाँ जिनके पास शहरों में शो रूम हैं, बनारस के उत्पादों को बेचकर अकूत मुनाफा बटोरता है।

इसलिए बुनकरों को लगता है की उन्हें अपने काम की उचित और पर्याप्त मजदूरी दिलाने के लिए सरकार को बुनकरों के लिए न्यूनतम मजदूरी तय करनी चाहिए। इस मजदूरी को इस तरह से तय करना चाहिए जिससे बुनकर को न्यूनतम स्तर पर जीने के लिए मजबूर न होना पड़े और यह मजदूरी सम्मानजनक तरह से जीने के लिए पर्याप्त हो सके। इसके अतिरिक्त महिलाओं को उनके द्वारा किए गए कामों के लिए मजदूरी दी जानी चाहिए क्योंकि उनके काम के बगैर यह उद्योग चल ही नहीं सकता। हैंडलूम और कपड़ा तथा अन्य विभाग इस काम को करने में मदद कर सकता है।

वित्तीय सहायता : कागज में बुनकरों के लिए सब्सिडी की बहुत सारी बातें हैं लेकिन उन्हें अक्सर इनका कोई लाभ नहीं मिलता है। इनमें बिजली बिल पर सब्सिडी, लघु उद्योग के लिए सब्सिडी, कर्ज आदि शामिल हैं। इनसे बुनकरों की आर्थिक स्थिति में सुधार होने की संभावना है। पूरे देश के बुनकरों को ये सब्सिडी मिलनी चाहिए और पूरे देश में इसे एकरूपता से लागू करना चाहिए। उदाहरण के लिए हम गुजरात को ले सकते हैं, यहाँ के बुनकरों को सब्सिडी दी जाती है। उत्तर प्रदेश के बुनकरों को यह सब्सिडी नहीं मिलती जिसके कारण उनका उत्पाद महंगा हो जाता है।

बुनकरों ने हमें बताया कि सरकारी योजना ठीक तरह से लागू नहीं होने के कारण उन्हें छोटे और लघु उद्योग को मिलने वाली 30-40 प्रतिशत सब्सिडी से उन्हें हाथ धोना पड़ता है। इसके अलावा समूह और क्लस्टर के लिए 5 करोड़ तक का ऋण देने की योजना है। इस योजना का ठीक से लागू होना सहकारी उद्यमिता और बुनकरों को आत्म–निर्भर बनाने के दिशा में बड़ा कदम हो सकता है।

इसके अलावा लॉकडाउन के समय बहुत सारे बुनकर काम नहीं रहने के कारण मजबूरी में अपना करघा बेच चुके थे या उन पर काम करना छोड़ चुके थे। सरकार उन्हें नया करघा खरीदने या पुराने को चालू करने के लिए`आर्थिक मदद कर सकती है जिससे वे फिर से अपने पैरों पर खड़े हो सकें।

सामाजिक सुरक्षा और बीमा : बुनकरों को लगता है कि सरकार उनके लिए पेंशन की व्यवस्था करे जिससे वे काम छोड़ने के बाद सम्मानजनक तरीके से ज़िंदा रह सकें।

बुनाई के काम में एक तरह से लगातार बैठे रहने या एक जगह पर एक तरह के काम करने के कारण घुटनों, जोड़ों और कमर में दर्द होना आम बात है। जरदोज़ी कारीगरों के काम में आँखों पर बोझ पड़ता है, इसलिए उन्हें अक्सर आँखों से देखने में दिक्कत होती है। लेकिन इन सबके बावजूद न तो कारखानेदार और ना ही सरकार के पास उनके लिए कोई स्वास्थ्य योजना है।

2009-2010 में भारत सरकार ने आईसीआईसीआई लोमबार्ड के साथ साझेदारी में बुनकरों के लिए स्वास्थ्य बीमा योजना शुरू किया। इसे कुछ सालों बाद बंद कर दिया गया। बुनकर परिवारों के एक से ज़्यादा सदस्य बुनाई के काम में शामिल होते हैं। इसके मद्देनजर सभी बुनकर परिवारों के लिए कारगर स्वास्थ्य बीमा योजना शुरू करने की ज़रूरत है।

नीतियाँ : बहुत सारे बुनकर और बुनाई क्षेत्र के छोटे उद्यमी आज भी सरकार की जीएसटी नीति और नोटबंदी नीति को कोसते हैं। इन दोनों नीतियों के कारण इसी सामाजिक-आर्थिक वर्ग को सबसे ज़्यादा नुकसान उठाना पड़ा और इनकी सीमित आर्थिक संपदा भी गायब हो गयी। बुनाई नगदी आधारित काम है और बुनकर द्वारा किसी काम को पूरा करने और उसे देने के बाद उसे

नगद भुगतान मिल जाता था। नगदी का अभाव कई बार बुनकरों के लिए खाना न मिल पाने का कारण बन जाता है। छोटे व्यापारियों को अक्सर उन्हें ग्राहक से मिलने वाले भुगतान से पहले जीएसटी का भुगतान करना पड़ता है। इससे उनके सीमित वित्तीय साधन पर बोझ पड़ता है। इसका प्रभाव बुनकरों को किए जाने वाले भुगतान पर पड़ता है। इससे छोटे और बड़े उद्यमियों बीच आर्थिक विषमता और बढ़ती है। बड़े उद्यमी जिनके पास शो रूम हैं और ज़्यादा आर्थिक साधन हैं, वे फलते-फूलते हैं और छोटे उद्यमी तबाह हो जाते हैं या ख़त्म हो जाते हैं।

स्वच्छता और शौच : शौच की समुचित व्यवस्था के अभाव में बुनकर परिवारों के रहने वाली जगहों पर स्वच्छता का अभाव दिखता है। बुनकरों ने सरकार से जिला शहरी विकास एजेंसी/ जिला ग्रामीण विकास एजेंसी/पंचायती राज से उनके रहने की जगहों पर बुनियादी सुविधा जैसे पीने का पानी, बिजली, नाला, शौचालय निर्माण करने की ज़िम्मेदारी देने के लिए कहा।

हैंडलूम आरक्षण कानून को कठोरता से पालन करना : हैंडलूम कानून (उत्पादन में आरक्षण) 1985 को पावर लूम और मशीनीकरण से बचाने के लिए लाया गया था। इस कानून में कपड़े से बनने वाले 11 उत्पादों को सिर्फ हथकरघे पर बनाने के लिए आरक्षित किया गया है।

हैंडलूम विकास आयुक्त के प्रवर्तन कार्यालय, बुनकर सेवा केंद्र और राज्य/ केंद्र शासित क्षेत्र कि सरकार इस कानून के प्रावधानों के उल्लंघन को रोकने के लिए पावर लूम पर लगातार निगरानी कर रहे हैं। लेकिन कई बेईमान उत्पादक इन सबके बावजूद पावर लूम उत्पाद को हथकरघे का उत्पाद बताने में सफल हो जाते हैं। इसलिए इस कानून को सख्ती से लागू करने की जरूरत है।

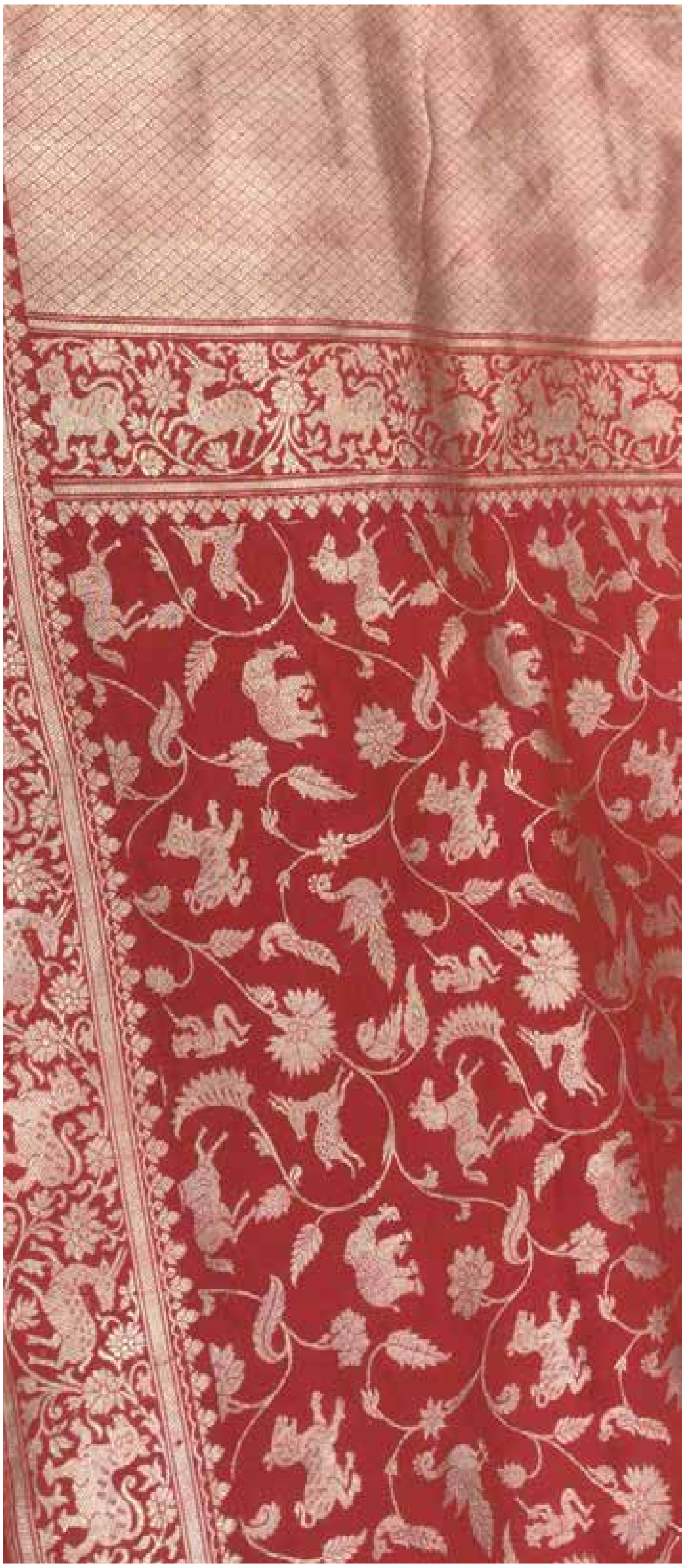

सिफ़ारिशें

पिछले दो दशकों से जिस उद्योग को बड़ा झटका लगा है जिसकी आप किसी इमारत के ढह जाने से तुलना कर सकते हैं, उस उद्योग को पुनर्जीवित करने के लिए सलाह देना बहुत कठिन काम है। लेकिन विस्तृत सर्वे करने और इस उद्योग से जुड़े लोग या लंबे समय से इस उद्योग को बारीकी से समझने वाले विशेषज्ञ से बात करने के बाद हम कुछ सिफ़ारिशें प्रस्तुत करना चाहते हैं।

केंद्र और राज्य सरकारें

I. केंद्र तथा राज्य सरकारें इस क्षेत्र के लिए बजट आबंटन को बढ़ाएँ और उसे 2014 के पहले कि स्थिति में ले आएँ।

II. बुनकर समुदाय के लिए कुछ सामाजिक सुरक्षा देने को सुनिश्चित करने के लिए महात्मा गांधी बुनकर बीमा योजना को पुनर्बहाल करें।

III. हैंडलूम सेंसस और दूसरे डाटा जुटाने के काम को आकादमिक और सांख्यकिय संस्थान को दें या विशेषज्ञ को देना सुनिश्चित करें।

IV. गाँव और तालुका स्तर पर और राज्य स्तर पर सहकारिता ढांचा (सरकार से वित्त पोषित और समर्थन) बनाने को सुनिश्चित करें। ये केंद्र तथा राज्य सरकारों की नीति से ही संभव सकता है।

V. इस उद्योग के कम अवधि और लंबी अवधि के ऋण ढांचा को समझते हुए हैंडलूम विकास निगम को पुनर्जीवित करने और उसके पेशेवर तरीके से काम करने को सुनिश्चित करें।

VI. सरकार कि नीति का ध्यान इस क्षेत्र में सामुदायिक भागीदारी पर जोर देते हुए रोजगार सृजन करना, उचित मजदूरी को सुनिश्चित करना होना चाहिए न कि बाज़ार को बढ़ावा देना। हालांकि सरकार इस क्षेत्र में मशीनीकरण और निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए अति-सक्रिय है लेकिन वह अपनी ऊर्जा सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से संभावना से भरपूर इस उद्योग को पुनर्जीवित करने के लिए नहीं कर रही है।

VII. राष्ट्रीय स्तर पर संवाद की ज़रूरत : हमारी राय में कई दशकों से बुनकरों के हितों में आवाज उठाने वाले संगठनो/ संस्थानों/ व्यक्तियों के साथ राष्ट्रीय स्तर पर संवाद होना चाहिए। “दस्तकार” उन संगठनो में से एक है। ।

VIII. सरकार को इस उद्योग के सभी हित धारकों की बैठक आयोजित करने के लिए पहल करनी चाहिए। इनमें तीन वर्ग के लोग हैं, सूत, व्यापारी और बुनकर। इन तबके के सरोकारों को ध्यान में रखकर देश और राज्य के हैंडलूम और कपड़ा नीति को बनाना चाहिए।

IX. इस औद्योगिक क्षेत्र में काम करने वाले भारतीय और विदेशी व्यापारियों द्वारा संयुक्त राष्ट्र के व्यापार और मानव अधिकार के दिशा-निर्देशक सिद्धांतों, 2011 का बगैर किसी समझौता के वास्तव में लागू करने के लिए सरकार को माहौल बनाना चाहिए। इस सिद्धांत के तहत कोई तीसरा पक्ष जिसमें व्यापार भी शामिल है, उनके मानव अधिकार उल्लंघन से लोगों को बचाना सरकार का कर्तव्य है। इसे सरकार उपयुक्त विधेयक लाकर, नियमन और कानून बनाकर कर सकती है। इसमें श्रम और मजदूर की गरिमा, सभी के लिए सम्मानजनक मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा को सुनिश्चित करना है। इसमें बुनाई उद्योग के संदर्भ में महिला कारीगर और बुनकर शामिल हैं। भारत सरकार की नीति में इस अंतराष्ट्रीय सिद्धांत के प्रति दायबद्धता और कर्तव्य का नजरिया बिलकुल नदारद है।

X. केंद्रीय सरकार को लोगों को जागरूक करना चाहिए कि बनारसी साड़ी और ब्रोकेड की बौद्धिक संपदा के मालिक पूर्वांचल के लोग हैं। बुनकर और कारीगर इस बात से पूरी तरह अंजान है कि 2009 में जियोग्राफिकल इंडिकेशन हैंडीक्राफ्ट के तहत पंजीकृत बनारसी साड़ी और ब्रोकेड के मालिक पूर्वांचल के कारीगर/कलाकार लोग हैं।

इस बात की जानकारी होने से बुनकर सशक्त होंगे और उनका शोषण कम होगा।

X1. भारत के संसद में सांप्रदायिक और लक्षित हिंसा रोकथाम विधेयक, 2011 (न्याय तक पहुँच और पुनरविभाजन), इसे अब सांप्रदायिक और लक्षित हिंसा रोकथाम विधेयक, 2011 कहा जाता है, को पेश करना और उसे पारित करना चाहिए।

व्यापार, निगम, व्यापारी और ब्रांड

A. बुनकरों और कारीगरों द्वारा बुने/तैयार किए गए हस्तकला उत्पाद को बेचकर व्यापार, निगम, व्यापारी और ब्रांड अकूत मुनाफा कमाते हैं जबकि इस व्यापार के केंद्र में बुनकरों को होना चाहिए था। इन संस्थानो को संयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकार और व्यापार पर दिशा-निर्देशक सिद्धांतो पर अमल करना चाहिए। इस दिशा-निर्देशक सिद्धांतों को संयुक्त राष्ट्र सभा के मानव अधिकार काउंसिल ने जून 2011 में अनुमोदित किया।

निर्देशक सिद्धांतों के अनुमोदित होने के बाद अंतराष्ट्रीय दायरे में व्यापार और मानव अधिकार के मानकों में सामंजस्य लाने की कोशिश की। इससे इन सिद्धांतों का व्यापार और मानव अधिकार के अधिकृत मानक होने की स्थिति को मजबूत किया।

B. निगम, ब्रांड और व्यापारियों को मानव अधिकार के बारे में समझदारी विकसित करनी चाहिए और इसके अलग-अलग पहलुओं को व्यापार में लागू करना चाहिए। कॉर्पोरेट को मानव अधिकार का सम्मान करना चाहिए, दूसरे के अधिकारों पर अतिक्रमण से बचने के लिए धीरज से काम करना चाहिए और अपने काम से होने वाले दुष्प्रभावों का समाधान करना चाहिए। हालांकि हमनें विस्तृत जांच रिपोर्ट में कोविड महामारी और लॉकडाउन के समय इन सिद्धांतो और न्यूनतम मानकों को पूरी तरह नजरंदाज करने और उनकी धज्जियां उड़ते हुए देखा है। बड़े राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय कम्पनियाँ और ब्रांड ने, उन्हें मुनाफा कमा कर देने वाले बुनकर समुदाय को पूरी तरह से उनके रहमो-करम पर छोड़ दिया और उनके लिए न्यूनतम ज़िम्मेदारी लेने से बच निकले।

C. व्यापार संबंधी मानव अधिकार उल्लंघन के शिकार बुनकरों को कारगर न्यायिक और गैर-न्यायिक निदान तक पहुँच जरूरी है।

प्रोफेसर अमिताभ कुंडु की रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए कुछ सिफ़ारिशें

राजेन्द्र सच्चर कमेटी की रिपोर्ट ने देश के सबसे बड़े धार्मिक अल्प-संख्यक समुदाय पर व्यापक स्तर पर होने वाले भेदभाव को दर्ज किया। प्रोफेसर अमिताभ कुंडु की रिपोर्ट (2014) में सच्चर कमेटी की सिफ़ारिशों को वास्तव में लागू करने का एक आंकलन किया गया है।

यह अध्ययन काफी हद तक एक समुदाय के विशेष स्थिति पर केंद्रित है, इसमें मुसलमान, दलित और अन्य पिछड़े वर्ग शामिल हैं। हमें लगता है की कुंडु रिपोर्ट में दी गई कुछ महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिशों को स्वीकार किया जा सकता है :

विविधता सूचकांक, समान अवसर, भेदभाव विरोधी विधेयक

i. सच्चर कमेटी ने सामाजिक और राजनीतिक विकास के हर पहलू में समानता और विविधता को बढ़ावा देने के लिए विविधता आधारित प्रोत्साहन व्यवस्था को लागू करने की सिफ़ारिश की है। इस उद्देश्य के लिए बनाई गई विशेषज्ञ कमेटी ने निजी और सार्वजनिक दायरे में, विशेष रूप से शैक्षणिक संस्थानों, रोजगार क्षेत्र में और हाउसिंग सोसाइटी, विविधता को प्रोत्साहित करने की व्यवस्था की देख-भाल करने के लिए विविधता आयोग बनाने की सिफ़ारिश की।

ii. इस कमेटी ने विविधता सूचकांक में शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य सेवा, विकास योजना और अन्य कई क्षेत्र तक पहुँच को शामिल करने की सिफ़ारिश की और हल निकालना चाहा।

iii. यह कमेटी शारीरिक प्रतिबद्धता, लिंग, धर्म, जाति और अन्य वर्गीकरण के आधार पर भेदभाव रोकने के लिए व्यापक भेदभाव विरोधी विधेयक बनाने और उसे लाने की सिफ़ारिश करती है। इस तरह के व्यापक भेदभाव विरोधी कानून की ज़रूरत है जो निम्नलिखित बिंदुओं को पूरा करता ही।

- कई पहचान और अति व्यापी पहचान के आधार पर होने वाले भेदभाव को पहचान सकता हो।
- भेदभाव मूलक काम के दायरे में राज्य और गैर-राज्य के क्षेत्र को शामिल करता हो।
- भेदभाव से विस्तृत दायरे में बचाव करता हो।

इस कानून में भेदभाव की कानूनी परिभाषा होनी चाहिए जो अलग–अलग रूपों में अभिव्यक्त होने वाले भेदभाव की पहचान कर सके और जो कानूनी रूप से बाध्यकारी नागरिक उपचार मुहैया कर सके।

ये सिफ़ारिशें समानता को लेकर भारत के नजरिये में मूलभूत बदलाव का सूचक हैं। आरक्षण से आगे बढ़कर यह विविधता को प्रोत्साहित करने और भेदभाव का विरोध करते हुए सामाजिक न्याय हासिल करने की बात कह रही हैं। समाज में व्यापक स्तर तक फैले संस्थागत भेदभाव को समाप्त करने के लिए कई तरह के औजारों में आरक्षण एक औज़ार है। यह विविधता सूचकांक और भेदभाव विरोधी कानून मिलकर ज़्यादा समतामूलक समाज बनाने में मदद करेगा। इसके साथ यह समानता को व्यापक और गहरा अर्थ देगा जो किसी समूह के लिए आरक्षण और उससे जुड़ी राजनीति से आगे ले जायेगा। भेदभाव विरोधी कानून किसी रूप में मौजूदा आरक्षण व्यवस्था को समाप्त नहीं करेगा और दोनों साथ चलेंगे। लेकिन ये एक सकारात्मक बदलाव होगा जिसमें लोकतांत्रिक भारत अपने नागरिकों की विविधता को स्वीकार करते हुए समानता को संस्थागत रूप और मान्यता दे रहा है।

यह कमेटी मानती है की समानता का इस रूप (विविधता और भेदभाव विरोधी कानून) का उपयोग सभी वंचित सामाजिक समूहों और समुदायों को शामिल करने को बढ़ावा देने के लिए करना चाहिए। उसे सिर्फ एक सामाजिक समूह तक सीमित नहीं करना चाहिए।

iv. कमेटी, विविधता सूचकांक के संसाधन का आबंटन, सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों और संस्थानो के संचालन में विस्तृत उपयोग करने की सिफ़ारिश करती है। यह पूरे देश में एक नई प्रक्रिया और रुझान शुरू करने में मदद करेगी। इससे सभी स्तरों पर नीति बनाने वालों के दिमाग में विविधता का विचार बैठ जायेगा। कमेटी, विविधता को बढ़ाने के लिए दिए गए प्रोत्साहन को सभी निजी और सरकारी संस्थान तक विस्तार करने का और इसके बारे में लोगों को जागरूक करने का प्रस्ताव करती है। यह देश को ऐसी स्थिति में ले जायेगा जहाँ विविधता हमारे लिए खुशी का विषय होगा ना कि सामाजिक उथल-पुथल और राजनीतिक तनाव का कारण बनेगी।

इसके अलावा कई और भाग हैं जिसमें कुछ महत्वपूर्ण सिफ़ारिशें की गई हैं :

भाग बी – रोजगार और हाल चाल में भागीदारी

भाग सी – आवास और बुनियादी सुविधा तक पहुँच में हिस्सेदारी

भाग डी – स्वास्थ्य

भाग इ – शिक्षा

भाग एफ – योजना और कार्यक्रम : ढांचा, अनुपालन और निगरानी

साथ ही प्रधानमंत्री के अल्प-संख्यक कल्याण के 15 सूत्रीय कार्यक्रम जिसमें महिलाओं और लड़कियों पर विशेष ज़ोर दिया गया है। इसे पूर्वी उत्तर प्रदेश के बुनाई उद्योग में प्रयोग और लागू करना चाहिए।

राष्ट्रीय और क्षेत्रीय अभियान का आह्वान

इस रिपोर्ट में उठाए गए मुद्दों जिसमें यह उद्योग जो ग्रामीण क्षेत्र से इतना नजदीकी से जुड़ा है, इसको टिकाऊ रूप से पुनर्जीवित करने से लेकर समापन निष्कर्षों और सिफ़ारिशों के मद्देनजर राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर तत्काल ठोस, सतत अभियान की ज़रूरत महसूस करता है। यह अभियान बहुआयामी होगा और उसका उद्देश्य शहरी रोजगार और भारत की सांस्कृतिक धरोहर को बचाना होगा।

- नीतियाँ, आर्थिक और व्यापार के व्यवहार को बनाने, उभरने और राज्य तथा केंद्र सरकार द्वारा बढ़ावा देने से पहले जनवादी तरीके से संवाद।
- अलग-अलग स्तर के कारीगर/बुनकर के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना और उसमें महिलाओं पर विशेष ज़ोर देना।
- कॉर्पोरेट और व्यापारियों तक कारीगर/बुनकर के साथ उत्पादन के रिश्ते में सामाजिक ज़िम्मेदारी और मानव अधिकार के हिस्से को शामिल करवाने के लिए संवाद करना।
- रिपोर्ट की मांगों पर चुने हुए प्रतिनिधियों के रुख का जायजा लेने को सुनिश्चित करना।
- इन उत्पादों के सभी भारतीय उपभोक्ताओं को अभियान में शामिल करना और उनसे इस उद्योग को बचाने की मांग में शामिल होने की अपील करना।

केस स्टडीज़

बुनकरों को चाय बेचने के लिए मजबूर होना पड़ा

कोविड महामारी के कारण लॉकडाउन होने पर एक समय सम्पन्न बनारसी बुनाई उद्योग ठप्प हो गया। पारंपरिक हैंडलूम उद्योग को धरोहर उद्योग का दर्जा हासिल होने के पहले से यह उद्योग सदियों से बनारस की सांस्कृतिक पहचान का हिस्सा रहा है, बनारस के बुनकर आज मुख्यता सरकार की उपेक्षा के कारण गुजर बसर करने के लिए कठोर संघर्ष कर रहे हैं। पिछले अक्टूबर महीने में फ़ैक्ट फ़ाइंडिंग करते समय हमारी मुलाक़ात एक बुनकर समूह से हुई जो आज चाय बेचने के लिए मजबूर है!

"कोई बाज़ार नहीं है किसी के पास पैसा नहीं है। चाय बेचने के काम से हमारा किसी तरह से गुजारा हो रहा है"। बजरडीहा के मोहम्मद जियाउद्दीन कहते हैं। वे पिछले अक्टूबर की 30 तारीख को हमारे टीम के साथ मुलाक़ात होने पर अपनी साड़ी की दुकान को चाय की दुकान में बदलने का कारण बता रहे थे।

विडंबना ये है कि इस आदमी को प्रधानमंत्री मोदी के लोकसभा क्षेत्र में चाय बेचने के लिए मजबूर होना पड़ा जबकि मोदी रेलवे स्टेशन पर उनके चाय बेचने को अक्सर शौक से याद करते हैं।

"लॉकडाउन के पहले हम 15-20 हजार रूपए कमा लेते थे'। जियाउद्दीन लॉकडाउन के पहले के समय को याद करते हुए कहते हैं। लेकिन आज स्थिति बहुत अलग है। "बुनाई में काम करने वाले हम सभी काम से बाहर हैं। हम नहीं जानते कि काम कब शुरू होगा। अभी सब बंद है, कोई काम नहीं है, कोई ग्राहक नहीं हैं – बुनकर मजदूर बनने के लिए मजबूर हो रहे हैं"।

हम घर में 12 लोग हैं। बाकी लोग अभी भी बुनाई करते हैं। उन्हें दो दिन काम मिलता है लेकिन बाकी 4 दिन काम मिलने का कोई आसार नहीं दिख रहा है"। वे आगे जोड़ते हैं "अगर बाज़ार चल पड़ता है तो हम लोग काम पर वापस आ सकते हैं, नहीं तो हम लोग चाय की दुकान ही चलायेंगे"।

जियाउद्दीन के दोस्त नदीम भी हमें बताते हैं "बिजली की सब्सिडी भी ख़त्म कर दी गई है। अब एक यूनिट के लिए 12 रूपए वसूला जा रहा है! वे असहाय होकर पूछते हैं "लोग इतना बिल कैसे भरेंगे? लेकिन बात इतनी ही नहीं है, अब बिजली बिल नहीं चुकाने वालों की बिजली काटी जा रही है, बुनाई और उसमें काम करने वालों को आर्थिक हताशा में धकेला जा रहा है। बेरोजगारी बढ़ रही है।

"बुनाई का कोई काम नहीं है। हम लोग कुछ नहीं कर रहे हैं"। उस साड़ी की दुकान, जो अब एक चाय की दुकान में बदल गयी है, उस पर काम करने वाले एक युवा समर कहते हैं "किसी भी तरह से हम पेट भरने लायक कमा ले रहे हैं"। वे भविष्य को लेकर चिंतित हैं, कहते हैं "हमें सिर्फ आधी मजदूरी मिलती है, यही हमारा रोजगार है, हम नहीं जानते कि हम और क्या कर सकते हैं"।

*कुछ लोगों के नाम को पहचान छुपाने के लिए बदल दिया गया है।

https://cjp.org.in/Lockdown-impact-purvanchal-weavers-forced-to-become-tea-sellers/

कर्ज में डूबता बुनकर परिवार

पूर्वांचल में पारंपरिक बनारसी बुनाई उद्योग ख़त्म हो रहा है और इस काम में लोग आर्थिक संकट से गुजर रहे हैं। पूरे के पूरे परिवार गरीबी में धकेल दिए गए हैं। स्कूल बंद हैं और ऑनलाइन क्लास नहीं ले पाने के कारण लड़कियां परेशान हैं।

हमारी टीम की मुलाक़ात 18 साल की अमीना से हुई जिसका 10 लोगों का परिवार मुबारकपुर में लॉकडाउन के बाद आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए जूझ रहा है।

"हमारे दोनों करघों पर परिवार के तीन लोग काम कर रहे हैं"। बुनकर परिवार की अमीना हमें बताती हैं। अमीना छः बहनों में एक हैं और उसके दो भाई हैं। वे सभी अपने माँ–बाप के साथ रहते हैं। उनके परिवार के पास एक हाथ करघा है और एक पावर लूम है। इन दोनों को परिवार के लोग ही चलाते हैं। तीनों बहने सिर्फ हथकरघे पर काम करती हैं।

"हम जिनके लिए साड़ी बुनते हैं वही हमें सामान देते हैं। हम साड़ी बुनते हैं और मजदूरी कमाते हैं"। अमीना बताती हैं।

अमीना कहती हैं "हम भोर 5 बजे से दोपहर 2 बजे तक पाली में काम करते हैं। उसके बाद 3 बजे से शाम 6 बजे और फिर रात 8 बजे से 11 बजे तक काम करते हैं"। ये कुल मिलाकर 15 घंटा हुआ जब परिवार करघा चलाता है। "हमारे पैर, कमर और हाथ में रोज दर्द होता है"। अमीना कहती हैं कि इतनी मेहनत के बाद उन्हें एक साड़ी बुनने में 10–15 दिन लगते जिसके लिए सिर्फ 2000 रूपए मिलते हैं। "अक्सर वे हमारी मजदूरी रोक देते हैं क्योंकि दो साल पहले घर बनाने के लिए हमनें कर्ज लिया था"। परिवार की आर्थिक खस्ताहाल स्थिति पर और ज़्यादा रोशनी डालते हुए अमीना बताती हैं।

"लॉकडाउन शुरू होने के बाद अचानक सब काम ठप्प हो गया। बुनाई का काम जब नहीं रहा तो मेरे अब्बू और भाई जान पकौड़ा बेचना शुरू किए"।

अमीना के पिता कहते हैं "सरकार हमें लॉकडाउन के समय चावल और गेंहू देती है, लेकिन इससे हमारा गुजारा नहीं चल सकता। दूसरी तरह के खर्चे के लिए हमें रिश्तेदारों और पड़ोसियों से कर्ज लेना पड़ा और अब वे लोग हमें और कर्ज देने से मना कर रहे हैं"।

यह बहुत गरीब परिवार है जो पूरी तरह से कर्ज में डूब चुका है। अमीना के पिता कहते हैं "हम एक लाख रूपया कर्ज लेने के लिए मजबूर हुए। हम लोगों ने जनधन खाता खोला लेकिन उसमें अभी तक कोई पैसा नहीं आया है। हमें दो बुनकर कार्ड भी मिले जिसके लिए हमें 30 रूपए देना पड़ा। हमारे पास और बुनकर कार्ड लेने के लिए पैसा नहीं है"। वे अफसोस जताते हैं। ये गौरतलब है की बुनकर कार्ड बगैर किसी पैसे के जारी किया जाता है।

लेकिन बात इतनी ही नहीं है। ये परिवार अमीना की बहन मारियाना की पढ़ाई को लेकर परेशान है। वह 9वीं कक्षा में पढ़ती है। लेकिन वह पढ़ाई नहीं कर रही है क्योंकि स्कूल बंद है और कोई ऑनलाइन क्लास नहीं चल रही है। मारियाना कहती हैं "हमारे घर में सभी के लिए एक मोबाइल फोन है और सभी जिसमे लड़कियां भी शामिल हैं, उसे ले सकती हैं। लेकिन मैं पढ़ाई नहीं कर सकती क्योंकि ऑनलाइन क्लास नहीं चल रही है"।

परिवार को महामारी के समय एक और आर्थिक झटका लगा है।" ईद के समय पूरे घर में पानी भर गया था। सभी मशीनों की दुबारा मरम्मत करनी पड़ी। हम लोगों ने इसके लिए किसी को काम पर नहीं रखा लेकिन फिर भी खर्चा हुआ"। अमीना बताती हैं। उनके पिता जोड़ते हैं "पचास हजार का खर्चा"। शुक्र है कि पावर लूम के ऑपरेटर के लिए विशेष योजना के द्वारा उन्हें बिजली दिया जाता है। हालांकि पिछले कुछ समय से वे बिजली बिल चुका नहीं पा रहे हैं।

अमीना की माँ की बातों से उनका दिल टूटने की बात सामने आ जाती है। वे कहती हैं "हमारे सभी गहने भी बिक गए, एक बाला और दो झाला को सुनार को सिर्फ 50,000 रूपए में बेच दिया गया"।

बड़ी बेटी अमीना की शादी को लेकर चिंतित पिता कहते हैं "कई परिवार अमीना की शादी का रिश्ता लेकर हमारे पास आ रहे हैं, लेकिन हमारे पास अभी पैसा नहीं है, गहने भी बिक गए, हम लोगों को दो साल इंतजार करने के लिए कहते हैं, लेकिन लोग मना कर देते हैं"।

ये कहानी cpj.org.in में मार्च,2021 में छपी थी।

https://cjp.org.in/weaver-family-drowning-in-debt-girl-childs-education-in-limbo/

हौसला तोड़ता कर्ज का बोझ और बढ़ता बिल

गोरखपुर के पुराने गोरखनाथ इलाके की गली में हमारी मुलाक़ात शाहजहाँ से हुई। वह अपने साइकिल पर सूत का टीला लिए हुए था। उसका व्यापार पिट चुका है, परिवार कर्ज में है और बिजली का बिल उसके जख्मों पर नमक छिड़क रहा है।

“मैं इस सूत को तकले पर ले जा रहा हूँ जिससे कि हम इसे पावर लूम पर उपयोग कर सकें”। शाहजहाँ ने हमें बताया “ये सूती-रोटो का मिश्रण है, इसके धागे से हम बेडशीट बनाते हैं”। शाहजहाँ के पास दो पावर लूम हैं लेकिन यह सात बच्चों का पिता लॉकडाउन और उसके बाद की आर्थिक बदहाली से जूझ रहा है।

“व्यापार ठप्प हो गया है। मैं अपना व्यापार सिर्फ अपने ग्राहकों के भुगतान करने पर चला सकता हूँ, लेकिन वह पैसा नहीं दे पा रहे हैं क्योंकि उनका माल नहीं बिक रहा है”। उनके बच्चे भी बेरोजगार हो गए हैं। “मैं कर्जे में डूबा हुआ हूँ। मैं ज़रूरत के अनुसार 500 या 1000 रूपया कर्ज लेता था। अभी तक मैंने रिशतेदारों और महाजन से कुल 35,000 रूपए कर्ज ले चुका हूँ। मुझे डर है कि मैं कर्ज नहीं चुका पाऊँगा”।

शाहजहाँ की तकलीफ़ों की सूची लंबी है। महाजन हमें कभी कर्ज नहीं देगा। हमारे पास ठीक से खाने का भी नहीं हो पाता है। हम मुश्किल से 200 रूपए कमा पाते हैं और बिजली का बिल बढ़ता जा रहा है।

उन्होंने बताया कि उनके पास राशन कार्ड है और उससे उन्हें सरकार से मुफ्त में राशन मिल जाता है लेकिन सरकार से पैसे की कोई मदद नहीं मिली है। उन्होंनें पानी के लिए घर में बोरेवेल लगाया है। लेकिन उनकी सबसे बड़ी चिंता बिजली का बिल चुकता करना है। मेरे पास दोनों पावर लूम का उपयोग करने लायक काम रहे या ना रहे मुझे बिजली बिल चुकाना होगा।

व्यापार चौपट होने का खतरा चारों ओर दिख रहा है। खुद को किस्मत पर छोड़ते हुए शाहजहाँ कहते हैं “अगर कोई काम नहीं मिला तो मजबूरी में मजदूरी करेंगे। शाहजहाँ की बात मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के लिए चिंता करने का विषय होनी चाहिए क्योंकि वह योगी के विधान सभा क्षेत्र के रहने वाले हैं।

(यह कहानी सबसे पहले cjp.org.in में मार्च 2020 में प्रकाशित हुई थी।)

https://cjp.org.in/crushing-debt-mounting-bills-a-weavers-lament/

एक जरदोज़ी कारीगर का अपने बच्चों को अपना काम नहीं सीखाने की कसम

बनारस के कोइला बाज़ार में नवंबर, 2020 में सर्वे के समय हमारी टीम की मुलाक़ात एक जरदोज़ी कारीगर मुर्तजा हुसैन से हुई। लॉकडाउन ने उन्हें बुरी तरह से तोड़ दिया है और उनका भविष्य अनिश्चित हो गया है। लेकिन वे अपने बच्चों की हालत अपने जैसी होता हुआ नहीं देखना चाहते।

"मैं उन्हें ये काम कभी नहीं सिखाऊँगा"। उनकी आवाज में गुस्सा और असहाय भाव था। "कभी नहीं", उन्होंनें दोहराया जैसे वे खुद से खामोश वादा कर रहे हों। उसके बाद वे रोने लगे।

"आर्थिक तंगी के कारण मेरा दोस्त इलाज नहीं करवा पाया और वह मर गया। उसका नाम पप्पू था। उसके तीन बच्चे हैं"। हुसैन आँसू पोछ्ते हुए कहते हैं। ये उल्लेखनीय है की पप्पू लॉकडाउन के पहले ही मर चुके थे क्योंकि उनके जरी के काम से इतनी आमदनी नहीं होती थी की वे इलाज करवा सकें।

ये बहुत सारे कारीगरों के लिए सच है। हमारे सर्वे के समय ऐसे कई कारीगरों से हमारी मुलाक़ात हुई। महामारी की मार से पहले ही ये लोग आर्थिक तंगी में थे। इनमें से बहुत कुछ तो सरकार द्वारा लिए गए फैसले थे जिसके कारण इन लोगों की आमदनी पर बुरा प्रभाव पड़ा। महामारी और लॉकडाउन के कारण मची आर्थिक उथल-पुथल तो ताबूत पर आखरी कील थी।

हुसैन जरदोज़ी का काम पिछले 25 साल से करते आ रहे हैं। और उनके परिचितों में 80 लोग उनकी तरह जरदोजी का बारीक काम करते हैं। उनके साथ के जरदोज़ी कारीगर सभी बच्चों को जरदोज़ी का काम नहीं सिखाने के बारे में उनकी राय से सहमत हैं।

"इस लाइन में काम कर अपना गुजारा नहीं कर सकते न ही परिवार चला सकते हैं"। सबने कहा और आगे जोड़ा "हम अपने बच्चों को इस काम में देखना नहीं चाहते, इस काम में कोई भविष्य नहीं है"।

हुसैन कहते है "अगर कोई अपने बच्चों को यह काम सिखाने की बात करता है तो हम उसे ऐसा नहीं करने के लिए समझाते हैं"।

इस काम से इतना असंतुष्ट रहने के पीछे काम से मोह-भंग होना है, ऐसा, लॉकडाउन के समय झेली गयी तकलीफ़ों के अनुभव के कारण से हुआ है। हुसैन 8 से 10 घंटा काम करते हैं। उनके काम में कौशल और बारीकी की ज़रूरत होती है लेकिन उन्हें इसके लिए 150-200 रुपए दिहाड़ी ही मिलती है।

"बुनकरों को बुनकर कार्ड मिलता है और रियायती दर पर बिजली मिलती है। इसका उपयोग वे घर में दूसरी चीजों के लिए करते है"। हुसैन का दोस्त आरोप लगाता है और पूछता है "हम शिल्पियों को क्या मिला है"?

वे बताते हैं कि कई सारे एनजीओ कई बार दौरा कर चुके हैं। लेकिन कारीगरों को एक पैसा नहीं मिला है। "हम कभी भीख नहीं मांगेगे। हम कुशल कारीगर हैं"। हुसैन के साथ काम करने वाला कोई कहता है। वो कहते-कहते रुक जाता है "जब तक हमारी आँखें सलामत हैं, हम काम करेंगे लेकिन जिस दिन वो चला जाएगा वो हमारे काम का आखरी दिन होगा"।

ये कहानी cpj.org.in में मार्च, 2021 में प्रकाशित हुई थी।

https://cjp.org.in/Lockdown-impact-a-Zardozi-artisan-vows-to-never-teach-his-children-his-craft/

बदहाली में लुंगी बुनकर

उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के बुनकरों पर लॉकडाउन के प्रभाव के अध्ययन के लिए सीजेपी टीम नवंबर, 2020 में शाहपुर, आजमगढ़ पहुंची। वहाँ हमारी मुलाक़ात अहमद अंसारी से हुई जो लुंगी बुनते और बेचते हैं। उन्होंनें बताया की कच्चे माल की बढ़ती कीमत और महंगी बिजली ने लागत बढ़ा दी है और किसी तरह से उत्पाद को सस्ते में बेचने की मजबूरी ने उनके धंधे को भारी नुकसान पर लाकर खड़ा कर दिया है। हालत इतनी ख़राब हुई की उन्हें परिवार को खिलाने के लिए उधार लेना पड़ा।

अहमद अंसारी कहते हैं "मैं इस काम में 1979-80 से हूँ"। अहमद अंसारी हमें अपना कारख़ाना दिखा रहे थे, कारख़ाने की स्थिति ख़राब थी। सीमेंट दरक रही थी और ईंट किसी तरह अपनी जगह पर बनी हुई हैं। अहमद बताते हैं "व्यापार घाटे में चलने के कारण मरम्मत का काम नहीं कर पाए हैं"।

बढ़ती लागत और प्रतिस्पर्धा की चुनौती

"लॉकडाउन से पहले हमें कपड़ा 300-350 रूपए किलो मिल जाता था। आज इसकी कीमत 1200-1500 रूपए हो गयी है। इसके साथ आप रंगाई का 400-500 प्रति किलो का खर्चा जोड़ लें"। वे आगे कहते हैं बिजली की कीमत भी बढ़ी है। "पहले एक लूम के लिए 75 रूपए बिजली के लिए देना पड़ता था। अब सरकार बिजली की कीमत बढ़ाना चाहती हैं"। हमारे दौरे के समय इलाके में बिजली की कीमत के प्रस्तावित बढ़ोतरी के खिलाफ बड़ा प्रदर्शन चल रहा था।

अंसारी का बेटा आस्फ़ाक भी बातचीत में शामिल हुआ। परिवार के कारखाने में 4 पावर लूम हैं। उन्होंनें एक मजदूर को दिहाड़ी पर रखा हुआ है। बुनकर सिर्फ बढ़ती लागत मूल्य जैसे कच्चे माल की कीमत, बिजली बिल, रंगाई, मजदूरी और परिवहन का खर्चा बढ़ने के कारण परेशान नहीं है, वह प्रतिस्पर्धा के कारण भी संघर्ष कर रहा है"। दुकानदार कई रंगों के रेडीमेड लुंगी बेचना पसंद करते हैं। ये लुंगी 250-300 रूपए में बिकती है जबकि हमारी लुंगी 150 रूपया में मिलती है"।

कर्ज का बोझ

"लॉकडाउन के समय सब कुछ ठप्प हो गया। हमें दोस्तों और रिशतेदारों से कर्ज लेना पड़ा। हम ठीक से ईद तक नहीं मना पाए। किस्मत ने हमारा साथ दिया और लॉकडाउन के समय जो स्टॉक था वह रमजान के समय बिक गया। अंसारी ने बताया कि उन्हें परिवार के खाने का इंतजाम करने के लिए 40-50 हजार रूपया कर्ज लेना पड़ा।

अंसारी परिवार ने एक–एक पावर लूम पर उसमें तेल डालने, मरम्मत करने और उसे दोबारा चलाने के लिए 1000 रूपए खर्च किए। पहले अंसारी मऊ से कच्चा माल खरीदते थे, लेकिन अब उनका भांजा खलीलाबाद से कच्चा माल खरीदता है। आस्फ़ाक कहते हैं "हमारी अपनी दुकान है लेकिन हमारी लुंगी दूसरी दुकानों में भी बिकती है। "2 मीटर की लुंगी बनाने में डेढ़ घंटा समय लगता है, लेकिन ये लगातार बिजली रहने से हो पाता है। लेकिन ऐसा कम ही हो पाता है"। अंसारी कहते हैं।

"स्थिति ऐसे ही रहने पर मुझे कोई बेहतर भविष्य दिखाई नहीं देता है। अब देखते हैं कि बिजली हड़ताल से क्या निकलता है"। अंसारी बिजली बिल बढ़ाने के प्रस्ताव के खिलाफ बुनकरों के विरोध का जिक्र कर रहे थे। हमारी मांग अगर मान ली जाती है तो हम आसानी से अपना व्यापार कर सकते हैं। नहीं तो हमें फैक्ट्री बंद करनी पड़ेगी"। अंसारी आगे जोड़ते हैं "इस उम्र में नया कुछ शुरू नहीं कर सकता, शायद मेरे बच्चे कुछ करेंगे"।

परिवार पर असर

मेरे तीन पोते और एक पोती है। मेरा छोटा पोता मदरसे में जाता था लेकिन अब हम उसे स्कूल में भर्ती कर दिए हैं। पोती अभी बहुत छोटी हैं। बच्चों की पढ़ाई प्रभावित हुई। बच्चे इतने छोटे हैं की वे ऑनलाइन क्लास नहीं कर सकते। ऊपर से यहाँ बिजली का समय समय पर गायब होना आम बात है, वाईफाई कनैक्शन और मोबाइल फोन को चार्ज करने के लिए भी बिजली जरूरी है।

आस्फ़ाक अपने बच्चों के भविष्य को लेकर चिंतित हैं। “सेलरी वाले रोजगार के लिए आवेदन करने के समय मुझे अपनी उम्र के बारे में सोचना पड़ता है। लेकिन मैं अपने बच्चों को पारंपरिक काम नहीं सिखाऊँगा। मेरे पिता ने पूरी ज़िंदगी इस कारख़ाने में काम किया। मैंने भी यहाँ काम किया। लेकिन इससे मुश्किल से हमारा गुजारा हो पाता है। हम लोग कभी इतनी बचत भी नहीं कर पाए की जिससे जमीन का एक छोटा प्लॉट भी खरीदा जा सके”। आस्फ़ाक अफ़सोस जताते हैं।

ये कहानी सबसे पहले cpj.org.in पर सितंबर, 2021 में प्रकाशित हुई।

https://cjp.org.in/Lockdown-impact-lungi-weavers-left-in-the-lurch

बेरोजगार पिता, प्रताड़ित माँ और शिक्षा से वंचित बेटियों की दास्तान

उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल में सीजेपी के फ़ैक्ट फ़ाइंडिंग के काम के रूप में हमनें बुनकर परिवारों की कुछ लड़कियों के साथ दिसंबर, 2020 में सराईया में एक बैठक की थी। लड़कियों ने बताया की उनके परिवार के पुरुष काम नहीं मिलने की हताशा में अपना गुस्सा अक्सर घर की औरतों पर शारीरिक हिंसा करके निकालते हैं। कुछ लड़कियां सचमुच भूखी थी, वे दिन में सिर्फ एक बार खाना खा कर गुजार रही थी।

चाँदनी अपने आँसू पोछकर हमारी टीम को बताती हैं कि "मेरे अब्बू के पास काम नहीं है और वे घर पर रहते हैं। मेरी अम्मी अगर कुछ कहती हैं तो अब्बू उन्हें मारते हैं"। चाँदनी ये कहकर फिर से रोने लगी।

महामारी ने बुनकर समाज को बहुत बड़ी चोट दी है। लेकिन महिलाओं पर इसका असर सबसे ज़्यादा हुआ है। महिलाएँ अपने परिवार के पुरुषों की हताशा बाहर निकालने के लिए पंचिंग बैग बन गयी हैं जिनके साथ मार-पीट कर पुरुष का गुस्सा बाहर निकलता है। अपने सर्वे के दौरान हमनें पाया कि जो महिलाएँ लॉकडाउन के पहले नरी भरने, साड़ी पोलिशिंग, कढ़ाई, धागा हटाने जैसे काम करके कुछ कमा लेती थी, उनका काम बंद हो गया और बगैर किसी आमदनी के वे और ज़्यादा असुरक्षित हो गयी हैं।

लड़कियों की पढ़ाई भी प्रभावित हुई है। चाँदनी अपने माता-पिता और दो भाई के साथ रहती है और स्कूल जाती थी। लेकिन लॉकडाउन के कारण स्कूल बंद है। वो कहती हैं "मैं काम करने के साथ स्कूल भी जा सकती हूँ"। उसकी ज़िंदगी कठिनाइयों से गुजर रही है, लेकिन आज उसकी किस्मत ठीक है और उसे खाना मिला है। मुस्कान अपने छोटे भाई की देख-भाल कर रही थी, उसने बताया "मुझे कक्षा 5 तक स्कूल में फीस नहीं देने की छूट थी, लेकिन अब मुझे स्कूल जाना है तो मेरे परिवार को फीस के लिए पैसा देना पड़ेगा।

एक दूसरी लड़की ने परिवारों की आर्थिक हालत पर रोशनी डाली, "क्या हम साड़ी बनाएँगे या घर की ज़रूरत पर 10 रूपया खर्च करेंगे"? हम लोगों के पिता बेरोजगार हैं, एक निजी स्कूल महीने में 30 रूपए फीस लेता है"। वह पूछती हैं "क्या हम घर चलाएँगे या स्कूल की फीस देंगे"? उसके पिता भी बेरोजगार हैं। माँ के ज़ोर देने पर वे कभी-कभी माल उठाने और उतारने का काम करने बाहर जाते हैं, वे कभी 10-20 रूपए से ज़्यादा नहीं कमाते"। वह पूछती हैं "हम इस पैसे से क्या कर सकते हैं"? "हम चटनी और चावल खा कर ज़िंदा हैं"।

ये गौरतलब है कि यह बैठक 25 दिसंबर, 2020 को हुई थी जब इस इलाके में लॉकडाउन की सख्ती में थोड़ी ढील दी गई थी। लॉकडाउन के इतने महीनों बाद और जब सरकार ज़रूरतमंदो की मदद करने के लिए राशन और अन्य जरूरी चीजें देने की योजनाओं की घोषणा कर रही थी तब लोग खाने का इंतजाम करने के लिए संघर्ष कर रहे थे.

ऐसा लगता है की सरकार की घोषणाओं के बावजूद उन लोगों तक राहत नहीं पहुंची जिन्हें इसकी ज़रूरत सबसे ज़्यादा थी।

ये कहानी सबसे पहले cpj.org.in में सितंबर, 2021 में प्रकाशित हुई थी।

https://cjp.org.in/Lockdown-impact-unemployed-fa-thers-abused-mothers-and-daughters-deprived-of-educa- tion/

क्या बनारस में धर्म के आधार पर सबसे ज़्यादा भेदभाव किया जाता है?

कोविड महामारी के समय लगाए गए लॉकडाउन का बुनाई उद्योग और उससे जुड़े कामों की स्थिति और बुनकरों की दुर्दशा का विश्लेषण करने के लिए किए जा रहे सीजेपी के फ़ैक्ट फ़ाइंडिंग के समय हमारे सामने महामारी के बीच धर्म के आधार पर भेदभाव करने के कई सारे मामले सामने आये। 29 नवंबर, 2020 को हमारी मुलाक़ात इम्तियाज़ से हुई, इम्तियाज़ आड़ी कारीगर हैं। आड़ी का काम नहीं रहने के कारण वे अब मजबूरी में कॉफी का ठेला लगा रहे हैं। उन्होंनें सरकारी महकमे पर अल्प-संख्यक समुदाय के लोगों पर तरह-तरह से भेदभाव करने के बहुत सारे आरोप लगाए।

"मैं लॉकडाउन के बाद बाबतपुर हवाई अड्डे से आ रहा था। कुछ पुलिस वालों ने मुझे रोककर पूछा तुम हिंदू हो या मुसलमान। मैंने जब बताया की मुसलमान हूँ तो वे मुझे अपने गाड़ी में बैठाकर कोरेनटाइन केंद्र ले जाने लगे। मेरे बहुत मिन्नत करने के बाद उन्होंने मुझे ढेड़ घंटे बाद छोड़ दिया। उस समय जो लोग भी अपने को हिंदू बता रहे थे उन्हें जाने दिया जा रहा था"।

इम्तियाज ने आरोप लगाया कि पुलिस वाले अक्सर मुसलमानों की दुकानों को बंद करवा देते थे लेकिन "इस इलाके में हिंदू दुकानों को खुला रहने दिया जाता था"। उन्होंनें आगे बताया कि सफाई कर्मचारी भी मुसलमान बहुल इलाकों में सफाई करने के लिए बहुत कम आते हैं लेकिन हिंदुओं के इलाके में रोज सुबह-शाम सफाई का काम करते हैं। किसी बड़े आदमी के आने का कार्यक्रम रहने पर ही मुसलमानो के इलाके में सफाई होती है।

इम्तियाज आड़ी कारीगर हैं। वे बुनाई से जुड़े इस काम के कुशल कारीगर हैं। इम्तियाज बताते हैं "लॉकडाउन के पहले मेरे पास इतना काम आता था कि मुझे लोगों को काम पर रखना पड़ता था। मेरे कारखाने में 40-42 लोग काम करते थे। सभी कारीगरों को 10-12 हजार रूपया मिलता था, मैं सारे खर्चे के बाद 20-22 हजार रूपया कमा लेता था"। इम्तियाज़ के कारखाने में काम करने वाले कारीगरों को आज ज़िंदा रहने के लिए भीख मांगना पड़ रहा है। "पहले वे लोग दिन में कम से कम 350 रूपया कमा लेते थे, अब वे लोग दाल-चावल की ज़रूरत पूरी करने के लिए 150 रूपया कमाने के लिए भी जद्दोजहद कर रहे हैं"।

लेकिन लॉकडाउन के बाद काम पूरी तरह से बंद हो गया। माल का ऑर्डर आना बंद हो गया और बचत ख़त्म होती गयी। उनके परिवार की महिलाएँ पहले ट्यूशन से महीने में 1500 रूपया कमा लेती थी। लॉकडाउन के बाद ये कमाई भी बंद हो गई। लॉकडाउन के पहले इम्तियाज़ मुंबई गए थे और वहाँ से लॉकडाउन के बाद सबसे पहले वाली गाड़ी से वापस आए। मुंबई से आने के कुछ दिनों में उनका एक्सिडेंट हो गया। उनकी बांह और पैर टूट गया। एक्सिडेंट के इलाज ने उनकी गिरती आर्थिक स्थिति को और ख़राब कर दिया।

लेकिन इम्तियाज़ को सबसे ज़्यादा तकलीफ अपने बच्चों के स्कूल छूट जाने की है। सिसकियाँ लेते हुए इम्तियाज़ कहते हैं "वे पढ़ रहे थे लेकिन 10वीं की परीक्षा के बाद उन्हें पढ़ाई छोड़नी पड़ी"।

इम्तियाज ने हमारे टीम को आगे बताया "घर में बुजुर्ग महिलाएँ हैं। हमनें बैंक में खाता खोला और सभी कागजी कार्यवाही पूरी की। लेकिन उनके खाते में पेंशन का एक रूपया भी नहीं आया।

इम्तियाज़ कर्ज में गले तक डूबे हुए हैं। इसलिए हमारी मुलाक़ात के 4 महीने पहले से वे एक कॉफी का ठेला लगाए हुए हैं। वे कहते हैं "मैंने दोस्तों और परिवार वालों से कर्ज लिया। मेरे ऊपर 60-65 हजार रूपया कर्ज है और इस दुकान से मुझे दिन में सिर्फ 300 रूपए मिलता है"।

पहचान छुपाने के लिए नाम बदल दिया गया है।

ये कहानी सबसे पहले cpj.org.in में छपी थी।

https://cjp.org.in/Lockdown-impact-religion-based-discrimination-rampant-in-varanasi/

“पहले जो लोग मुझे सलाम कहते थे वे अब मुझसे बात तक नहीं करते”

पूर्वांचल में तथ्य जुटाने के समय हम ऐसे बेरोजगार परिवारों से मिले जो भुखमरी के कगार पर खड़े थे। दिसंबर, 2020 में हमारी मुलाक़ात रेवरी तालाब, मदनपुरा के बुजुर्ग मोहम्मद शोएब से हुई। उस दिन शोएब ने खाना भी नहीं खाया था।

65 साल के शोएब अपने दुकान में बैठकर कहते हैं “आज हमारे रसोई में खाना नहीं बना”। ये वही दुकान है जिसे शोएब ने लॉकडाउन के पहले अपना व्यापार बढ़ाने के लिए खरीदी थी। अब ये संपत्ति डूबा हुआ निवेश बन कर रह गई है क्योंकि उनके द्वारा बुनी गई साड़ी को खरीदने वाला कोई नहीं है।

मेरे पास अभी भी 50,000 रूपए का स्टॉक है लेकिन मुझे डर है की इन्हें कबाड़ की कीमत पर बेचना पड़ेगा। लॉकडाउन की घोषणा के समय उन्होंने अपनी दुकान भी नहीं खोली थी और उनके सपने चकनाचूर हो गए।

अपने सुनहरे दिनों को याद करते हुए शोएब कहते हैं “हमारे पास 12 लूम थे, लेकिन आज सब बंद है। मजदूरों ने दूसरा काम ले लिया है। कोई सब्जी बेच रहा है, कोई गाड़ी चला रहा है तो कोई दिहाड़ी मजदूर बन गया है”।

परिवार की महिलाएँ करघे पर काम नहीं करती हैं लेकिन वे बुनाई का काम शुरू होने से पहले किए जाने वाले काम जैसे नरी भरने और बाना पर काम करती हैं।

शोएब के परिवार में 15 लोग हैं। इनमें स्कूल जाने वाले छः बच्चे भी हैं। बच्चे निजी स्कूल में जाते थे लेकिन महामारी के कहर के बाद बच्चे ऑनलाइन क्लास भी नहीं कर पा रहे हैं।

शोएब के पास आधार कार्ड, वॉटर कार्ड और पीले रंग के राशन कार्ड और जीरो बैलेंस का जनधन खाता भी है। वे कहते हैं बावजूद उन्हें सरकार की ओर से कोई मदद नहीं मिली। वे कहते हैं “मुझे एक पैसा नहीं मिला”। वे आगे और जोड़ते हैं “मुफ्त में हमें जो दो बार गेंहू मिला वह खाने लायक नहीं है, वह पिसाई करने की मेहनत के काबिल भी नहीं है।

शोएब भी गले तक कर्ज में डूबे हैं। उन्होंनें एक आदमी को दिखाते हुए कहा कि मैंने 2,50,000 रूपया कर्ज लिया है और जिनमें इनसे लिया हुआ 75,000 कर्ज भी शामिल है। ऐसा लग रहा था की यह आदमी अपना पैसा वापस लेने के लिए आया है। शोएब ने कहा “मैं दुकान के मालिक मुबारक का कर्जदार हूँ, सब्जी बेचने वाले से मैंने कर्ज लिया है”।

कर्जदार बनने का असर लोगों के साथ रिश्तों पर भी पड़ा है। पहले लोग मुझे सलाम करते थे और मेरी खैरियत पूछने के लिए मिलते थे। लेकिन आज मैं कर्जदार हूँ, किसी को मेरी खैरियत पूछने की परवाह नहीं है”। ये अचानक से आई आर्थिक बदकिस्मती ने शोएब को कितना प्रभावित किया है इसे हम उनके बार-बार “मैं कैसे कर्ज चुका पाऊँगा” और मेरे पास कब पैसा होगा” पूछने से समझ सकते हैं।

ये कहानी सबसे पहले cpj.org.in में सितंबर, 2021 में प्रकाशित हुई थी।

https://cjp.org.in/Lockdown-impact-those-who-once-greeted-me-with-Salaam-dont-even-talk-to-me-any-more/

फॉर्म भरा है, बुनकर कार्ड भी है लेकिन सरकार से कोई मदद नहीं

उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल में हमारे फ़ैक्ट फ़ाइंडिंग के समय हमें मऊ जिला के घोसी के करीमुद्दीन पुसट्टी मोहल्ला के बुनकर रियाज़ उल हक मिले। नवंबर, 2020 में जब हम उनसे मिले तो उन्होंनें बताया की उनके पास बुनकर कार्ड है और उन्होंनें बुनकरों की मदद के लिए बनाई गई तमाम सरकारी योजना का लाभ लेने के लिए कई तरह के फॉर्म भी भरे, लेकिन इसके बावजूद उन्हें कोई मदद नहीं मिली।

“इस इलाके में मुख्यत मुसलमान बुनकर रहते हैं। मेरा पूरा परिवार, महिला भी शामिल हैं, इस काम में लगे हैं। महिलाएँ नरी भरने और मोती को पिरोने के साथ दूसरे तरह के कई काम करती हैं”। रियाज़-उल संयुक्त परिवार के दस लोगों के साथ रहते हैं। रियाज कहते हैं “हमारा परिवार शुरू से यहाँ रहते आया है। मेरे पिता अब्दुल समाद दलाल और दादा इमानुल हक अपने नाम के साथ “सट्टी” लगाते थे”।

अधेड़ उम्र के रियाजुल हक बुनकर हैं। उनके पास पावर लूम है जिसे वे खुद चलाते हैं। महामारी के पहले उनके पास पर्याप्त काम था और उन्होंनें काम के लिए दूसरे समुदाय के लूम चलाने वालों को रखा था। लेकिन लॉकडाउन के बाद काम पूरी तरह से ठप्प हो गया। मैं लोगों को काम पर नहीं रख सकता था। जिन लोगों के छोटे-छोटे बच्चे हैं उन्हें मजबूरी में बाहर जाकर मजदूरी करना पड़ा। उन्होंनें बताया की जो लोग अपने मजदूरों को मदद कर सकते थे उन्होंने 500 या 1000 रूपया दिए। लेकिन ज़्यादातर लोग कर्जे में हैं”।

सरकार की ओर से कोई मदद नहीं मिल रही है। मैंने 100 रूपया देकर बुनकर कार्ड बनाया और यहाँ तक बुनकरों को मदद देने वाली योजनाओं के फॉर्म भी भरे। इसके बावजूद मुझे एक पैसा नहीं मिला है। उनके पास जनधन खाता है। उस खाते में मुझे 3 बार 500 रूपया मिला। गुस्से में रियाज़ कहते हैं “ये लोग हमें योजनाओं के नाम से बेवकूफ बना रहे हैं”। बुनकर और शिल्पी कार्ड राज्य में बुनकरों और पारंपरिक कारीगरों को आर्थिक मदद देने के लिए बनाया गया था। हालांकि इस योजना का थोड़ा बहुत ही लाभ लोगों तक पहुंचा है जिसमें कई जरूरतमंद परिवारों को लाभ से वंचित रखा गया।

ऑर्डर मिलना मुश्किल हो गया है और उसकी जो कीमत मिलती है वह भी बहुत कम है। 5.5-6 मीटर की साड़ी बुनने पर हमें 30-35 रूपया मिलता है। अगर दिन में हम 5 साड़ी भी बुनते हैं (बिजली मिलने पर निर्भर करता है) तो हमें 150-175 रूपया ही मिलेगा। आप इसे पहले के सुनहरे दिनों के साथ तुलना करें जब एक पावर लूम से महीने में 35000-40000 रूपया मिलता था। आज ग्राहक मिलना मुश्किल हो रहा है और सरकार हमसे नहीं खरीदेगी। पावर लूम पर 72 रूपया सब्सिडी भी ख़त्म कर दिया गया है। बिजली महंगी और अनियमित हो गयी है”। रियाज अफ़सोस जताते हैं।

इलाके में दूसरे तरह की सुविधा भी कम हैं।” यहाँ एक सरकारी मदरसा और प्राथमिक विद्यालय है लेकिन कोई इंटर कॉलेज या मेडिकल कॉलेज नहीं है। सबसे नजदीकी सरकारी अस्पताल 3 किलोमीटर दूर है”।

तबलिगी जमात की घटना को लेकर मीडिया की विभाजनकारी सांप्रदायिक रिपोर्टिंग की चोट मुसलमान समुदाय पर पड़ी। मीडिया ने इसे जिस तरह से दिखाया उसके कारण लोगों में दहशत पैदा हुई। लोगों में इतना डर घर कर गया की कुछ लोग अपने घर से बाहर कदम रखना नहीं चाहते थे”।

ये रिपोर्ट सबसे पहले cpj.org.in प्रकाशित हुई

https://cjp.org.in/Lockdown-impact-filled-forms-have-Bunkar-card-yet-got-no-help-from-govt/

सीजेपी रिसर्च टीम

अनुपमा सिंह

शमा बानो

राजू

मोहम्मद शरीफ

मुशर्रत हुसैन

संध्या सिंह

नीतू सिंह

शीरीन शबाना खान – पीवीसीएचआर

छाया कुमारी – पीवीसीएचआर

ज्योति गोंड – पीवीसीएचआर,

शाइस्ता परवीन – पीवीसीएचआर,

रुख़साना बेगम – पीवीसीएचआर,

फिरदौस बानो – पीवीसीएचआर,

फिरदौस अहमद – पीवीसीएचआर

संजीदा सिद्दीकी – पीवीसीएचआर

घनश्याम पटेल – पीवीसीएचआर

राजेंदर प्रसाद – पीवीसीएचआर

Published by

Citizens for Justice and Peace, India

Copyright©2022, Citizens for Justice and Peace, India All Rights Reserved